कुम्भ 2019

प्रयागराज

कुम्भ 2019

प्रयागराज

दिव्य कुम्भ भव्य कुम्भ

प्रकाशक एवं सम्पादक

उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार

संस्कृति विभाग, लखनऊ
बी-44, महानगर विस्तार, लखनऊ-226006
दूरभाष: 0522 2331813
ईमेल: uparchives.lko@gmail.com
archives.up@nic.in
www. uparchives.up.nic.in

पुस्तक लेआउट एवं मुद्रक

नियोगी बुक्स

ब्लॉक-डी, बिल्डिंग नं. 77
ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेज़-1
नई दिल्ली-110020, भारत
दूरभाष: 91-11-26816301, 26818960
ईमेल: niyogibooks@gmail.com
www.niyogibooksindia.com

प्रकाशन वर्षः 2019

सर्वाधिकार सुरक्षित। प्रकाशक की लिखित पूर्व अनुमति के बिना इस पुस्तिका का पुनर्मुद्रण, चाहे वह फोटोकॉपी हो या रिकॉर्डिंग, किसी भी रूप में इसमें छपी जानकारी का पुनः उपयोग वर्जित है।

॥ सर्वसिद्धिप्रदः कुम्भः ॥
ॐ
कुम्भ 2019
प्रयागराज

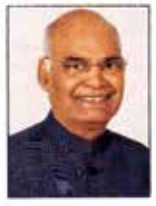

सत्यमेव जयते

राष्ट्रपति
भारत गणतंत्र
PRESIDENT
REPUBLIC OF INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाले उत्तर प्रदेश राज्य में गंगा-यमुना के संगम पर 'कुम्भ-2019' का आयोजन 15 जनवरी, 2019 से 04 मार्च, 2019 तक किया जा रहा है।

कुम्भ मेला भारत की सनातन संस्कृति का प्रतीक है। प्राचीन मान्यताओं को संरक्षित एवं जीवंत करने वाला यह एक अनोखा स्वत:-स्फूर्त जन आयोजन है। वैसे तो हमारे देश में कुम्भ का आयोजन चार स्थानों पर 12-12 वर्ष के अंतराल पर किया जाता है, परंतु तीर्थराज प्रयाग में कुम्भ के आयोजन का विशेष महत्व है।

इस पावन अवसर पर, तीर्थयात्री पवित्र संगम में स्नान करने के साथ-साथ धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। हमारी सनातन संस्कृति की प्राचीनता को आधुनिक परिवेश से जोड़ने वाले इस विराट पर्व पर करोड़ों की संख्या में श्रद्धालु पहुंचते हैं।

मैं, इस अवसर पर प्रकाशित की जा रही 'प्रयागराज कुम्भ-2019, कुम्भ मेला: एक परिचय' पुस्तिका की सफलता की कामना करता हूं।

रामनाथ कोविन्द

(राम नाथ कोविन्द)

नई दिल्ली

01 अक्तूबर, 2018

भारत के उपराष्ट्रपति
VICE-PRESIDENT OF INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ है कि पुण्यभूमि प्रयाग में, 15 जनवरी, 2019 से 04 मार्च, 2019 तक महापर्व प्रयाग कुंभ का आयोजन किया जा रहा है। अर्धकुंभ का आयोजन महाकुंभों के मध्य एक पवित्र महोत्सव है। हिन्दू संस्कृति के लिए यह एक अनन्य अवसर है। इसकी महदवधारणा इस बात से सिद्ध है कि इस आयोजन के लिए उत्तर प्रदेश सरकार कार्यरत है। कुंभ और प्रयागराज के महत्व को श्रद्धालुओं के साथ साझा करने के उद्देश्य से इस अवसर पर "प्रयागराज कुंभ-2019, कुंभ मेला" नामक एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है। निस्संदेह स्मारिका का नाम इसके महत्व के अनुकूल है चूंकि कुम्भ पर्व की संस्कृति वास्तव में भारतीय अस्मिता के उन्नयन की द्योतक है।

इस महान अनुष्ठान के आयोजन हेतु मैं हृदय से शुभकामना करता हूँ। कुम्भ अध्यात्म और आधुनिक विचारणा में अतुल्य पुण्य संतुलन स्थापित करे, ऐसी मेरी मंगल कामना है। कोटि कोटि बृहद् जनसमुदाय इस महान पर्व का साक्षी होगा, और सभी गंगा, यमुना और सरस्वती के समागम स्थल पर अपने सत्त्व को और उन्नत पा सकेंगे। यह वस्तुतः आध्यात्मिक लाभ का एक अनुपम अवसर है।

मैं पुण्यभूमि प्रयाग के तट पर स्नान करने वाले श्रद्धालुओं, विद्वज्जनों, समाज और धर्मसेवियों व संस्कृति के रक्षकों को अपनी सदाकांक्षा और शुभाकांक्षा संप्रेषित करता हूँ।

(एम. वेंकैया नायडु)

नई दिल्ली
10 सितंबर, 2018

सत्यमेव जयते

प्रधान मंत्री
Prime Minister

संदेश

यह अत्यंत हर्ष और सौभाग्य का विषय है कि अगले वर्ष के आरंभ में 15 जनवरी से 4 मार्च, 2019 तक प्रयागराज में संगम तट पर पवित्र कुम्भ मेले का आयोजन हो रहा है। प्रयागराज की पवित्र धरती भारत की समृद्ध सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत की पहचान रही है। प्रयागराज ही वह एकमात्र पवित्र स्थली है, जहां देश की तीन पावन नदियां गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती मिलती हैं।

कुम्भ को भारतीय संस्कृति का महापर्व कहा गया है। प्रयागराज के इस संगम में कुम्भ के समय कई परंपराओं, भाषाओं और लोगों का भी अद्भुत संगम होने वाला है। संगम तट पर स्नान और पूजन का तो विशिष्ट महत्त्व है ही, साथ ही कुम्भ का बौद्धिक, पौराणिक, ज्योतिषीय और वैज्ञानिक आधार भी है। एक प्रकार से कहें तो कुम्भ स्नान और ज्ञान का भी अनूठा संगम सामने लाता है।

कुम्भ में श्रद्धालुओं को विभिन्न मठों से जुड़े शंकराचार्यों, महामंडलेश्वरों और साधु-संतों का सान्निध्य मिलता है। इसे विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक मेला माना जाता है। हमारे लिए यह गर्व की बात है कि यूनेस्को ने कुम्भ मेले को मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर के रूप में मान्यता प्रदान की है।

सेवा-सत्कार और पर्यटन व्यवसाय से जुड़े लोगों के लिए भी कुम्भ एक बहुत बड़ा अवसर होता है। पवित्र कुम्भ का रंग ही ऐसा होता है, जो हर तरह के पर्यटकों को अपनी ओर सहज ही आकर्षित करता है। जो लोग भारत दर्शन के लिए आना चाहते हैं, उन्हें पूरे भारत की विविधता एक जगह सिमटी हुई मिल जाती है और जो लोग आध्यात्मिक टूरिज्म पर आना चाहते हैं, उनके लिए तो इससे भव्य आयोजन कोई हो ही नहीं सकता।

मुझे आशा है कि प्रयागराज में आयोजित होने वाला यह पवित्र कुम्भ मेला देश की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक विविधताओं को और पोषित व पल्लवित करेगा, साथ ही सामाजिक समरसता, एकता और सद्भाव बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। इस अवसर पर पवित्र कुम्भ मेले के आयोजन से जुड़े सभी लोगों और मेले में आने वाले करोड़ों श्रद्धालुओं को मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

(नरेन्द्र मोदी)

नई दिल्ली
05 सितम्बर, 2018

राम नाईक
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

सत्यमेव जयते

राज भवन
लखनऊ - 226 027

12 दिसम्बर, 2018

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, संस्कृति विभाग द्वारा प्रयागराज में आयोजित 'कुम्भ–2019' पर एक कॉफी टेबल बुक का प्रकाशन किया जा रहा है।

कुम्भ मेला भारत की आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक आस्था का केन्द्र है। कुम्भ के ज्योतिषीय, वैज्ञानिक, बौद्धिक एवं पौराणिक महत्व को देखते हुए भारत ही नहीं अपितु विश्व के अनेक देशों के लोग प्रयागराज में आते हैं। प्रयागराज जो गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम स्थल है, की आध्यात्मिक पहचान वैदिक काल से रही है। हमारे लिए यह गर्व की बात है कि यूनेस्को ने कुम्भ मेले को 'मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विरासत' के रूप में मान्यता प्रदान की है। 'कुम्भ–2019' से पहले प्रदेश सरकार द्वारा जनभावनाओं के सम्मान के अनुरूप इलाहाबाद के नाम को बदलकर प्रयागराज किया जाना अभिनन्दनीय है।

'कुम्भ–2019' पर प्रकाशित कॉफी टेबल बुक में कुम्भ से संबंधित पौराणिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों के समावेश से आमजन, विद्वानों एवं जिज्ञासुओं को कुम्भ की ऐतिहासिकता के विषय में अनेक गूढ़ जानकारी प्राप्त होगी।

कॉफी टेबल बुक के सफल प्रकाशन हेतु मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(राम नाईक)

संख्या- ओ- /सीएम-1/201

योगी आदित्यनाथ

मुख्य मंत्री
उत्तर प्रदेश

दिनांक : 13 DEC 2018

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि प्रयाग कुम्भ–2019 के अवसर पर उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार द्वारा कुम्भ के समृद्ध इतिहास पर आधारित एक कॉफी टेबल बुक का प्रकाशन किया जा रहा है।

वैश्विक पटल पर कुम्भ शांति एवं सामंजस्य का प्रतीक है। इस आयोजन से अनेक आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रसंग जुड़े हैं। कुम्भ की महत्ता को देखते हुए यूनेस्को द्वारा इसे 'विश्व की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर' की सूची में सम्मिलित किया गया है। प्रयागराज में आयोजित होने वाला कुम्भ आध्यात्मिकता का ज्ञान समृद्ध करते हुए परम्परा, ज्योतिष, खगोल विज्ञान, सांस्कृतिक पद्धतियों एवं व्यवहार को प्रदर्शित करता है।

प्रयागराज के पावन संगम तट पर सम्पन्न होने वाला कुम्भ विश्व का विशालतम आध्यात्मिक, सांस्कृति एवं धार्मिक समागम है। उत्तर प्रदेश सरकार प्रयाग कुम्भ–2019 को भव्य एवं दिव्य रूप से आयोजित करने के लिए कृतसंकल्पित है। हमारा प्रयास रहेगा कि कुम्भ में पधारने वाले सभी श्रद्धालुओं को सुविधा तथा श्रद्धा–भक्ति से आप्लावित वातावरण प्राप्त हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पवित्र आयोजन सामाजिक समरसता, एकता एवं सद्भाव बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

'कॉफी टेबल बुक' के उद्देश्यपरक प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

(योगी आदित्यनाथ)

लाल बहादुर शास्त्री भवन, लखनऊ

लक्ष्मी नारायण चौधरी
मंत्री
दुग्ध विकास, अल्पसंख्यक कल्याण,
मुस्लिम वक्फ, हज, संस्कृति एवं
धर्मार्थ कार्य, उत्तर प्रदेश

कार्या.– 92 बी, मुख्य भवन, उ.प्र. सचिवालय
दूरभाष– 0522– 2238989/ 2213293

दिनांक– 12.12.2018

सन्देश

मुझे यह जानकर अपार प्रसन्नता हो रही है कि कुम्भ – 2019 के अवसर पर उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, संस्कृति विभाग द्वारा कॉफी टेबल बुक का प्रकाशन किया जा रहा है।

गंगा यमुना के संगम पर स्थित प्रयागराज तीर्थ स्थल है जहां हमें भारतीय परम्परा, श्रद्धा और आध्यात्म के दर्शन होते हैं। उ0प्र0सरकार द्वारा माह जनवरी–2019 में कुम्भ पर्व का आयोजन प्रयागराज में किया जा रहा है। कुम्भ पर्व भारतीय संस्कृति का अनूठा महापर्व है जहां बिना किसी निमन्त्रण पत्र के, बिना किसी भेदभाव के सिर्फ अपनी श्रद्धा एवं आस्था के कारण करोड़ो लोग एकत्र होते हैं और गंगा स्नान की मोक्षदायिनी परम्परा का निर्वहन क़रते हैं। प्रदेश सरकार द्वारा कुम्भ के अवसर पर पधारने वाले तीर्थ यात्रियों को हर संभव सुविधा उपलब्ध कराई जा रही है।

इस अवसर पर उ0प्र0 राजकीय अभिलेखागार, संस्कृति विभाग द्वारा कॉफी टेबल बुक का प्रकाशन किया जा रहा है जिसमें कुम्भ के इतिहास के संबंध में ज्ञानवर्धक जानकारी प्रदान की गई है।

मुझे विश्वास है कि इस कॉफी टेबल बुक का प्रकाशन जन सामान्य ही नहीं बल्कि विघार्थियों एवं विद्वानों के लिये उपयोगी सिद्व होगी। प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएं ।

(लक्ष्मी नारायण चौधरी)
मंत्री
दुग्ध विकास संस्कृति, धर्मार्थ कार्य,
अल्पसंख्यक कल्याण मुस्लिम वक्फ
एवं हज विभाग
उत्तर प्रदेश

जितेन्द्र कुमार

आई.ए.एस.

प्रमुख सचिव।

अर्द्धशा०प०स०-

संस्कृति, भाषा, उ0प्र0पु0स0 एवं सामान्य प्रशासन

उत्तर प्रदेश शासन

कक्ष सं० 64, नवीन भवन, सचिवालय,

दूरभाष सं0 0522-2239298 फैक्स : 2235453

लखनऊ दिनांक :

सन्देश

आस्था तथा ऐतिहासिकता के महापर्व का इस धरा पर ऐसा जीवन्त उदाहरण है, जो पूरे विश्व में किसी अन्य स्थान पर इस वृहद स्तर पर आयोजित नहीं किया जाता है। इस अवसर पर विभिन्न धर्म के मतावलम्बियों को सहिष्णुता एवं सद्भाव के साथ एक स्थान पर देखा जा सकता है।

'गंगा यमुनर्यो मध्ये यत्र गुप्ता सरस्वती।
तस्य दर्शन मात्रेण पूतो भवति पातकी।।
(प्रयाग माहात्म्य)

"तीर्थराज प्रयाग में गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम स्थल त्रिवेणी का दर्शन सभी को करना चाहिए क्योंकि इसके दर्शन मात्र से व्यक्ति का पाप नष्ट हो जाता है।" तीर्थ यात्रा के दिव्य एवं भव्य अनुभव का लाभ अवश्य ही कुम्भ–2019 के अवसर पर पधारे करोड़ों श्रद्धालुओं को अवश्य प्राप्त होगा।

इस अवसर पर उ0प्र0राजकीय अभिलेखागार द्वारा प्रकाशित की जा रही कॉफी टेबुल बुक में वेदों में कुम्भ एवं गंगा, कुम्भ की पौराणिक गाथा, अखाड़ों का इतिहास, मध्यकाल में प्रयाग तथा ब्रिटिश काल से सुनियोजित कुम्भ का आयोजन आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। हमें विश्वास है कि जनमानस के साथ–साथ विद्वान, छात्र एवं जनसामान्य के लिए भी यह पुस्तक उपयोगी होगी। इस अवसर पर मेरी शुभकामनाएं।

04.01.2019

(जितेन्द्र कुमार)
प्रमुख सचिव
संस्कृति, भाषा, सामान्य प्रशासन एवं
उ0प्र0 पुनर्गठन समन्वय विभाग
उत्तर प्रदेश शासन

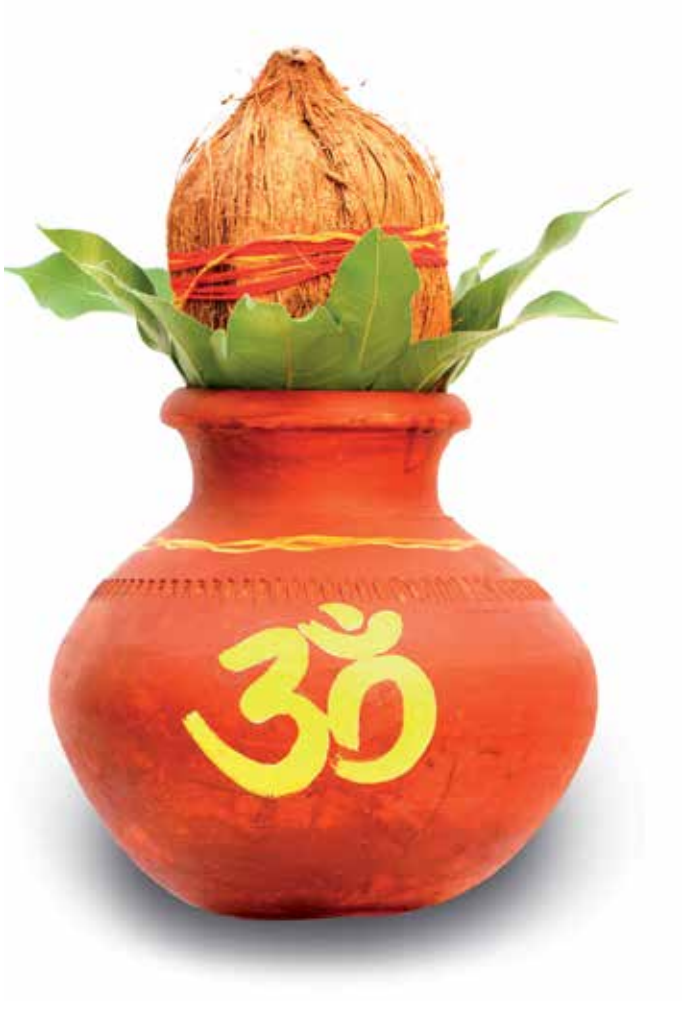
ॐ

विषय-सूची

प्राक्कथन	23
कुम्भ	25
'कुम्भ' शब्द का अर्थ	31
प्रयाग की महत्ता	41
कुम्भ की पौराणिकता	51
कुम्भ कथाएं	65
प्रयाग और आदि शंकराचार्य	77
मध्यकाल में प्रयाग	83
ब्रिटिश काल में कुम्भ	89
कुम्भ पर्व की वैज्ञानिक एवं ज्योतिषीय महत्ता	97
कुम्भ की परम्पराएँ	107
योग	143
रेत पर आस्था का संगम	173
आदि शङ्कराचार्य	193

प्राक्कथन

कुम्भ भारतीय धार्मिक और आध्यात्मिक संचेतना का प्रतीक है, आत्मा के पावन आलोक का दिग्दर्शन है। प्रयागराज की पवित्र धरती भारत की समृद्ध सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत की पहचान रही है। कुम्भ का बौद्धिक, पौराणिक और ज्योतिषीय और वैज्ञानिक आधार भी है, इसका आयोजन भारत में चार स्थानों पर किया जाता है। इस अवसर पर श्रद्धालुओं को विभिन्न मठों से जुड़े शंकराचार्य, अखाड़ों से जुड़े साधु-संतो का सानिध्य मिलता है। कुम्भ सामाजिक समरसता, एकता एवं सद्भाव बढ़ाने में भूमिका निभाता है। भारत देश के विभिन्न धर्मों के मानने वालों का इस अवसर पर एकत्रित होना सामाजिक सद्भाव एवं सहिष्णुता का प्रतीक है। कुम्भ मेला में सम्पूर्ण भारत से तीर्थ यात्रियों का अभूतपूर्व जनसमूह उमड़ता है तथा विदेशियों एवं बुद्धिजीवियों के आकर्षण का केन्द्र है। इस अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर को यूनेस्को द्वारा मान्यता प्रदान की गयी है।

प्रयागराज कुम्भ 2019 के अवसर पर उत्तर प्रदेश राजकीय अभिलेखागार, संस्कृति विभाग द्वारा कॉफी टेबल बुक का प्रकाशन किया जा रहा है। इस प्रकाशन में वैदिक काल से गंगा का महत्व, प्रयाग माहात्म्य, हर्षवर्धन का प्रयाग में सर्वस्व दान, पुराणों में कुम्भ की पौराणिकता, समुद्र मंथन की कथा, नवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य द्वारा हिन्दू धर्म के पुनरूत्थान के सम्बन्ध में किए गये प्रयास को दर्शाया गया है। मध्यकाल में अलबरूनी द्वारा गंगा और जौन नदियों के संगम तथा 1843 में कैप्टन लियोपोल्ड वॉन आर्लिक द्वारा इलाहाबाद में संगम का महत्व एवं प्राचीन हिन्दू मन्दिर पातालपुरी का उल्लेख किया गया है। ब्रिटिश काल में महिला यात्री फैनी पाक्र्स आदि विदेशी यात्रियों द्वारा प्रयाग में लगने वाले विशाल मेले का वर्णन किया गया है। 1870 ई0 में पहली बार कुम्भ मेले का नाम अभिलेखों में दर्ज मिलता है, यह अभिलेख उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ में संरक्षित है।

कुम्भ के सम्बन्ध में पौराणिक साक्ष्य के अतिरिक्त ऐतिहासिक तथ्य विभिन्न पुस्तकों से संकलित किया गया है जिस हेतु उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार इन्दिरा गांधी नेशनल सेण्टर फॉर आर्ट्स-नई दिल्ली, श्री अनिल यादव, राज्य परियोजना समन्वयक तथा श्री सुमित श्रीवास्तव, वैज्ञानिक अधिकारी, इन्दिरा गांधी नक्षत्रशाला-लखनऊ, राष्ट्रीय संग्रहालय-नई दिल्ली, राजा रवि वर्मा हैरिटेज फाउण्डेशन, संदीप एण्ड गीतांजलि मैनी फाउण्डेशन-बंगलुरू, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग-लखनऊ, श्रीमती शशि सिन्हा, अमीरूद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी-लखनऊ, उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी पुस्तकालय, लखनऊ, प्रो. डी.पी. दुबे, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रो. नीना डेविड, पाश्चात्य इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के सहयोग के लिए आभारी है।

मुझे विश्वास है कि प्रमुख सचिव, संस्कृति विभाग श्री जितेन्द्र कुमार तथा विशेष सचिव, संस्कृति विभाग श्री शिशिर के मार्गदर्शन में उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार द्वारा तैयार की गयी कॉफी टेबल बुक जनसामान्य के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

डॉ. रुबीना बेग
निदेशक
उ.प्र. राजकीय अभिलेखागार

कुम्भ

राशिचक्रं

RĀSI CHAKRA.

The HINDU ZODIAC, and SOLAR SYSTEM

From a picture in the collection of Colonel Stuart.

कुम्भ मेला उत्सव पर पावन स्नान के लिए उमड़ती श्रद्धालुओं के भीड़

सम्पूर्ण विश्व की मानव जाति के उपलब्ध समस्त ज्ञान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पूरे विश्व में कहीं भी कुम्भ जैसा कोई आयोजन नहीं होता है। विश्व इतिहास और विभिन्न संस्कृतियों की परम्पराओं में भी कुम्भ जैसे आयोजन की एक भी झलक देखने को नहीं मिलती है तथा समस्त संसार के राजतन्त्र, गणतन्त्र, लोकतन्त्र, अधिनायक तन्त्र और साम्यवादी व्यवस्थाओं के समस्त इतिहास में भी ऐसा एक भी उद्धरण नहीं मिलता, जिसे कुम्भ पर्व के समकक्ष रखा जा सके।

हिन्दू तीर्थयात्रियों द्वारा कुम्भ मेला उत्सव पर पावन स्नान का दृश्य

एकमात्र भारतवर्ष ही ऐसा देश है, जहाँ पर अपनी तरह का यह अनूठा आयोजन होता है। सैकड़ों वर्षों से सभी जातियों, भिन्न सामाजिक स्तरों, विचारधाराओं के लोग कुम्भ मेला आयोजन में सम्मिलित होते रहे हैं। कुम्भ पर्व मानव समूह को अमरत्व एवं अमृत कथा के इस तथ्य से अवगत कराता है कि प्राणियों का शरीर नश्वर है, जो क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पाँच तत्वों से मिलकर बना है, जिसके अन्दर आत्मा का निवास होता है तथा आत्मा अमर है अर्थात् कुम्भ जीवित प्राणियों की आत्मा की अमरता और पंचतत्वों से बने शरीर (देह) की नश्वरता की ओर ध्यान इंगित कराता है।

कई निर्धारक तत्व एक साथ मिलकर कुम्भ पर्व का संयोग बनाते हैं जिसका वास्तविक दृश्यांकन कुम्भ मेले के रूप में देखने को मिलता है। ग्रह संयोग, धर्म, आस्था, पवित्र नदियां, वृक्ष, साधु-संन्यासी, श्रद्धालु, तीर्थयात्री तथा मेला, स्नान सभी कुम्भ पर्व में समाए हुए हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कुम्भ मानवता के ऐसे समूह के लिए सार्वजनिक खुला मंच है, जो जन्म और मरण के अनवरत चलने वाले चक्र से अपने को मुक्त करना चाहता है।

कुम्भ मेले को विश्व के सबसे बड़े ऐसे धार्मिक जनसमूह या आस्तिकों की भीड़ के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ सम्पूर्ण देश के विभिन्न प्रदेशों से, विभिन्न भाषाएं बोलने वाले और विभिन्न मतों के लोग एक साथ एकत्रित होते हैं।

इस पर्व के आयोजनों को देखने के लिए सम्पूर्ण विश्व से बहुत से लोग, रिपोर्टर, मीडिया आदि आते हैं। यदि इसमें भाग लेने वाले श्रद्धालुओं की संख्या भी देखी जाए तो यह विश्व के किसी भी मेले में उपस्थित होने वाले लोगों से सर्वाधिक है।

कुम्भ ज्योतिषीय गणना पर आधारित होता है जिसे एक स्नान पर्व, एक मेला तथा एक तीर्थयात्रा के रूप में जाना जाता रहा है।

‘कुम्भ’ शब्द का अर्थ

हिन्दू कर्मकांड व पूजन हेतु जल तर्पण, कलश एवं नारियल

कुम्भ शब्द के बहुत से अर्थ मिलते हैं, अर्थात 'कुम्भ' शब्द बहुत व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होता है। कुम्भ शब्द का अर्थ है - कलश या घड़ा और मानव शरीर का भी एक पर्यायवाची कुम्भ है - जैसे घड़े में कोई भी द्रव्य पदार्थ भरा जाता है, वैसे ही मानव शरीर में आत्मा का निवास होता है।

ग्रन्थ संख्या-12452, दशकर्मपद्धति में कहा गया है कि कलश के मुख में विष्णु, कंठ में भगवान शंकर, मूल में ब्रह्मा, मध्य भाग में मातृगण एवं चारों वेद सभी अंगों सहित सप्तद्वीप

प्रयागराज में कुम्भ मेला के दौरान गंगातट पर बैठा एक साधु

पृथ्वी आदि सभी कलश में समाश्रित हैं।

स्नान के उद्भव और महत्व के रूप में जाना जाने वाला पर्व या त्योहार कुम्भ मेले के विषय में बहुत कुछ कहा और लिखा गया है। जे. टॉलब्वाय व्हीलर हिस्ट्री ऑफ इण्डिया फ्राम अर्लियर एजेज का मानना है कि जल शुद्धता का प्रतीक है और यह अग्नि की भांति ही प्रत्येक घरों के लिए आवश्यक है, जल के शुद्धिकरण सम्बन्धी गुण का जब से एहसास हुआ है तब से इसका शरीर से सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में बहुत समय नहीं हुआ है कि इसके

प्रयागराज स्थित कुम्भ मेला उत्सव का एक विहंगम दृश्य

आध्यात्मिक गुण का भी हम महत्व समझते हैं।

गंगाजल में विशिष्ट स्वच्छता गुण होने और उससे मानव को होने वाले लाभ के कारण इसकी प्रशंसा की गई है। सिन्धु सभ्यता के अन्तर्गत मोहनजोदड़ो से प्राप्त स्नानागार की विशेषता बताते हुए जॉन मार्शल कहते हैं कि मोहनजोदड़ो के निवासियों में स्नान का औपचारिक महत्व था। जल के प्रति यहां के निवासियों के द्वारा किया गया यह सम्मान कोई अलग नहीं था और इसे आर्य और इसके पहले के लोग भी महत्व देते थे।

प्रयागराज में गंगातट पर विश्वभर से आए श्रद्धालुओं का जमावड़ा: पॉन्टून ब्रिज का एक दृश्य

किसी उद्देश्य के लिए स्नान करना और धुलना दुनिया के लगभग सभी धर्मों में होता है। टॉलब्वाय व्हीलर दोबारा लिखते हैं कि आग के बाद जल ही एक ऐसा तत्व है जिसे धार्मिक उपासना में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

यदि हम भारत तक सीमित रहे तो वैदिक काल में जिसका समय मैक्समूलर के अनुसार लगभग 1200 - 1000 ई.पू. है, ऋग्वेद के अष्टम अष्टक में कुम्भ पर्व का प्रमाण मिलता है (संदर्भ-महाकुम्भ विशेषांक-2001)-

कुम्भ मेला पर प्रयागराज स्थित जल अर्पण करते हुए एक भक्त

जघान वृत्रं स्वधितिवं नेव रूरोज पुरो अरन्दनसिन्धून।
विभेद गिरिं नवभिन्न कुंभ भागा इन्दो अकृणुता स्वयुग्भि ।। 10 । 87।। 7

इसका अर्थ यह है कुम्भ पर्व में तीर्थयात्रा करने वाला मनुष्य स्वयं अपने फलरूप से प्राप्त होने वाले सत्कर्मों, दान, यज्ञादि से काष्ठ काटने वाले कुल्हाड़े आदि की तरह अपने पापों का विनाश करता है, जिस प्रकार सिंधु आदि नदियां अपने तटों को नष्ट करते हुए प्रवाहित होती

कुम्भ मेला पर गंगा में पावन स्नान के बाद साड़ी बदलती एक महिला

हैं, उसी प्रकार कुम्भ पर्व मनुष्य के पूर्व जन्मार्जित किये हुए सत्कर्मों से उनके शारीरिक पापों को नष्ट करता है और नूतन कृत्रिम पर्वतों की भांति बादलों से संसार में सुवृष्टि करते हैं।

वैदिक काल में जल की महत्ता दर्शाई गई है और वैदिक स्तुतियों में जल के देवता वरुण माने जाते हैं। हमारे पूर्वज ऐसा मानते हैं कि जल ईश्वर द्वारा दिया गया मानवता के लिए एक उपहार है, कुँआ, तालाब, नदी जिसके द्वारा जल प्राप्त होता है, वह हमारे लिए सम्मान की वस्तु है।

कुम्भ मेला पर प्रयागराज स्थित गंगा में डुबकी लगाते श्रद्धालु

विशिष्ट कारणों से नदियों को हम अलग सम्मान देते हैं। अनन्त काल से सदानीरा नदियां जीवन जीने के विचार देती रही हैं। यह हमें नहीं पता है कि यह कहाँ से बहना प्रारम्भ हुई हैं और कहाँ तक आ रही हैं, लेकिन सदा से बह रही हैं। इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में नद्यः (River) बताए गये हैं, इस प्रकार की कोई सूचना किसी सूक्त के बारे में नहीं है, बल्कि जो भी पुस्तकें उपलब्ध हैं उनमें न केवल देवता, बल्कि ऋषियों का भी उल्लेख श्लोकों में मिलता है। विभिन्न विद्वानों द्वारा इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न काल की अनुक्रमणिका भी बनाई गई है। 800 से 1000 ईसा पूर्व के मध्य शौनक नामक एक विद्वान की जानकारी मिलती है जिन्होंने अनुक्रमणिका बनाई जिसमें समस्त सूचनाएं मिलती हैं। ऋग्वेद में ऐसे बहुत सारे श्लोक हैं जिनमें नदियों और उनके देवताओं के सम्बन्ध में उल्लेख प्राप्त होते हैं। सिन्धु नदी की विशेषताओं से युक्त नौ मन्त्र भी मिलते हैं, मन्त्र संख्या-5 में बहुत सारी नदियों का उल्लेख मिलता है जिनमें सतलज, रावी, व्यास, चिनाब, झेलम और सहायक नदियों के साथ ही गंगा-यमुना और सरस्वती का उल्लेख मिलता है।

सरस्वती वही है जिसका संगम गंगा-यमुना के साथ प्रयाग में हुआ है। ऋग्वेद का नवां मण्डल बाद में जोड़ा गया है। 600-300 ई.पू. के मध्य यह खिल बाद में जोड़ा गया है, कुछ विद्वान कहते हैं कि 10वां मण्डल 1500 ई.पू. के मध्य या 300 ई.पू. के मध्य जोड़ा गया जब आर्य पूर्ण रूप से प्रकाश में आये और सिन्धु से परिचित हो चुके थे। ऋग्वेद के 10वें मण्डल, 75वां सूक्त के 5वें मन्त्र के प्रारम्भ में गंगा-यमुना का उल्लेख आया है। आर्यों को गंगा-यमुना के माहात्म्य का परिचय प्राप्त हुआ। आर्य गंगा के मैदान से परिचित हो चुके थे। गंगा को देवताओं की नदी या सुरसरि के नाम से भी जाना जाता है। प्राचीन काल में जो यह खोज की गई थी उसे उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में यह सिद्ध कर दिया कि गंगाजल में उल्लेखनीय गुण प्राप्त हुए हैं। मेगस्थनीज (इण्डिका का लेखक जो मौर्यकाल में भारत आया था) ने भी गंगा का वर्णन किया है। कुछ दिनों बाद लोगों को यमुना नदी की विशिष्टता की जानकारी भी प्राप्त हुई, क्योंकि यह नदी भगवान श्रीकृष्ण के प्रारम्भिक जीवन से जुड़ी हुई थी।

प्रयाग की महत्ता

वाल्मीकि रामायण में प्रयाग माहात्म्य का वर्णन प्राप्त होता है-

प्रयागमभितः पश्यः सौमित्रे धूममुत्तमम अग्नेर्भगवतः केतुं मन्ये संनिहितो मुनि।।

सर्ग - 54 श्लोक-5

अर्थात् अयोध्या काण्ड में जब श्री राम वनवास जा रहे हैं तब भाई लक्ष्मण से कहते हैं कि सुमित्रानन्दन, वह देखो प्रयाग के पास भगवान अग्निदेव की ध्वजारूप धूम उठ रहा है, मालूम होता है मुनिवर भारद्वाज यहीं हैं।

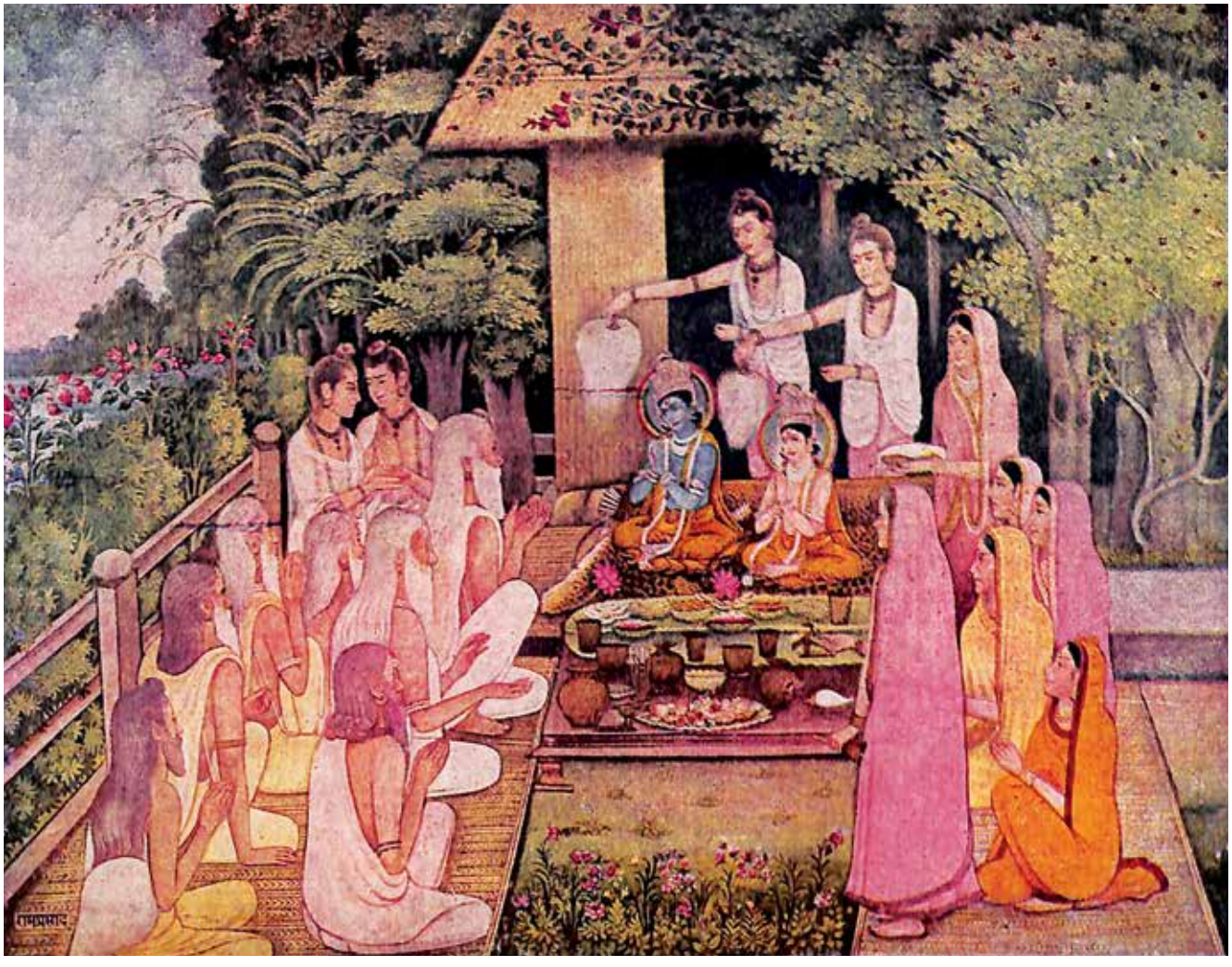

वनवास के दौरान ऋषि भारद्वाज से उनके आश्रम में मिलते हुए राम, सीता व लक्ष्मण

'प्रयाग' इलाहाबाद का प्राचीन नाम है जहां पर तीन पवित्र नदियों का संगम स्थल है- गंगा, यमुना, सरस्वती। यह नाम महायज्ञ से उद्भवित है। मान्यता है कि यहां पर प्रजापति (ब्रह्मा) ने महाबलिदान कर यज्ञ किया था, इसीलिए 'प्र' परिचायक है प्रजापति का और 'याग' परिचायक है यज्ञ का। 'राज' इसका माहात्म्य बताता है। अतः यह तीनों मिलकर इसे तीर्थस्थानों में इसे सर्वोच्च स्थान देते हैं, अर्थात् प्रयाग दो शब्दों से बना है - प्र और याग, 'प्र' उपसर्ग का अर्थ है विचार व्यापकता या उत्कृष्टता, 'याग' का अर्थ है यज्ञ में आहुति

ह्वेनसांग

(बलिदान)। जब देवताओं का आह्वान किया जाता है और पवित्र अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है और वेदमंत्रों को जपा जाता है तब यज्ञ समारोह होता है। यह विश्वास है कि अग्नि एक महत्वपूर्ण देवता हैं जिनके माध्यम से हम आह्वान करते हैं, इसका अर्थ है- आहुति या समर्पण। बलिदान का विचार बाद में विकसित हुआ, यह माना जाता है कि शुद्ध वैदिक धर्म में आत्महत्या की प्रत्येक दशा में निन्दा की जाती है। उत्तर वैदिक काल में अपने शरीर का बलिदान बहुत अच्छा कार्य माना जाने लगा। महाभारत, पुराण, धर्मशास्त्रों में अनेक ऐसे उद्धरण मिलते हैं जिनमें स्वयं की आहुति, प्रयाग में देने की प्रशंसा की गयी है।

ऋग्वेद के अध्याय 8, सूक्त 3, मंत्र 6 में कहा गया है कि जहां दो नदियां सफेद और मटमैली आपस में मिलती हैं वहां स्नान करने से स्वर्ग और स्वयं की आहुति देने से अमरता प्राप्त होती है। इस सम्बन्ध में महान वैदिक विद्वान, जिन्होंने पूर्व मीमांसा की रचना की थी, कुमारिल का उल्लेख किया जा सकता है। कुमारिल का शंकराचार्य से शास्त्रार्थ प्रयाग में ही हुआ था। कुमारिल ने प्रयाग में ही मूंगफली के छिलकों की अग्नि में अपना शरीर भस्म कर दिया, क्योंकि वे स्वयं को मुक्त करना चाहते थे। यह लोगों का दृढ़ विश्वास है कि यदि प्रयाग में मृत्यु हो तो मोक्ष प्राप्त होता है, प्रयाग में शरीर का त्याग करना सदैव असाधारण रहा है। यह प्रचलन बाद में गरीबों तथा जरूरतमन्दों में धन दान करने से जुड़ गया।

प्रयाग में हर्षवर्धन (644 ई.) प्रत्येक पांच वर्ष में प्रचुर धन दान करता था। हर्षवर्धन को शिलादित्य भी कहा जाता है। हर्षवर्धन का वर्णन अपने यात्रा वृत्तान्त में चीनी यात्री ह्वेनसांग भी करता है।

कुम्भ मेला पर हजारों हिन्दू श्रद्धालुओं द्वारा गंगा में पावन स्नान

प्रयाग (PO-LO-Ye-Kiy) में शिलादित्य ने महावितरण का अखाड़ा लगाया, इसके उत्तर में गंगा (King-Kia), दक्षिण में यमुना (Ye-Mu-Na) दोनों नदियां उत्तर-पश्चिम से आकर पूरब की ओर बह रही थीं, यहां आकर एक होकर संगम बनाती हैं। जहां यह दोनों मिलती हैं वहाँ बड़ा सा मैदान है जो कि 14-15 ली में है। यह आईने की तरह चपटा है। पुराने समय में भिन्न-भिन्न राजा यहां दान देने के लिए आते थे और इससे दान की प्रथा चली जो यह कहती है कि इस स्थान पर थोड़ा सा दान करने से भी अधिक पुण्य प्राप्त होगा।

ह्वेनसांग एक ऐसी सभा में उपस्थित था, बतलाता है कि ऐसे अवसरों पर राजा अपने संचित कोष को गरीबों, दरिद्रों, ब्राह्मणों, बौद्ध तथा जैन भिक्षुकों में मुक्त हस्त से बांटता

कुम्भ मेला उत्सव पर कैम्प में श्रद्धालुगण

था तथा अपने जवाहरात तथा कपड़े, सामान, हार, कर्णफूल, कंगन, कंठहार तथा अपने मुकुट के रत्नों इत्यादि को दान में देकर अपनी दानशीलता तथा उदारता का एक उदाहरण स्थापित करता था।

हर्ष ने एक बांस का बाड़ा (Arena of Charitable Offering) बनवाया था। यहां पर खाद्य पदार्थ दानस्वरूप लेने के लिए 1000 हजार लोग रूक सकते थे। दान लेने के लिए अलग-अलग समूहों, पहले श्रमण, नास्तिक, निरग्रन्थ, गरीब, अनाथ को दान के अखाड़े में बुलाया गया। दान का यह कार्यक्रम एक माह तक चला। उसने लिखा है कि बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्म हर्ष के साम्राज्य के प्रधान धर्म थे।

प्रयाग ब्राह्मण धर्म का मुख्य गढ़ था। उसके अनुसार प्रयाग क्षेत्र की परिधि लगभग 5000 ली (चीनी मील) थी और राजधानी दो नदियों के संगम पर 20 ली से अधिक की परिधि में स्थित थी। इस नगर में एक देव मंदिर था (जो बौद्ध मंदिर नहीं था) जिसके सामने ही विस्तीर्ण शाखाओं वाला एक विशाल वृक्ष था जिस पर चढ़कर लोग इसी स्थान पर अपने प्राण देने के लिए स्वयं ही कूद पड़ते थे। यह

वृक्ष अक्षय वट कहलाता था और प्रयागराज में अब भी इसकी पूजा होती है। जनता में यह विश्वास स्थापित हो गया कि अन्य स्थानों की अपेक्षा प्रयाग में कम दान करने पर भी ज्यादा पुण्य प्राप्त होगा।

ह्वेनसांग ने गंगा के महत्व को भी बताया है - इस पानी में स्नान करने से पाप का प्रदूषण धुल जाता है और इसलिए दूर-दूर स्थानों से लोग आते हैं। वह भोजन छोड़कर अपना जीवन समाप्त करते हैं।

ह्वेनसांग कहता है कि जो लोग धार्मिक प्रक्रिया में भाग लेते हैं वो सूर्यास्त के समय एक स्तम्भ पर चढ़ते हैं और एक हाथ व एक पैर के सहारे उसे पकड़े रहते हैं और एक हाथ और एक पैर स्वतन्त्र रखते हैं, उनकी दृष्टि सूर्य पर रहती है। सूर्यास्त के समय तक उनका सिर दाहिनी दिशा में मुड़ने लगता है। रात्रि में वे स्तम्भ से उतरते हैं। दर्जनों तपस्वी ऐसे हैं जो इस प्रक्रिया में भाग लेते हैं और मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

कुम्भ पर्व की पौराणिकता की कथा का एक भाग पुराणों से प्राप्त होता है। मत्स्य पुराण में क्षीरोद मंथन की कथा प्राप्त होती है। स्कन्द पुराण में लक्ष्मी देवी का आविर्भाव तथा अमृत विभाजन की कथा प्राप्त होती है।

कुम्भ की पौराणिकता

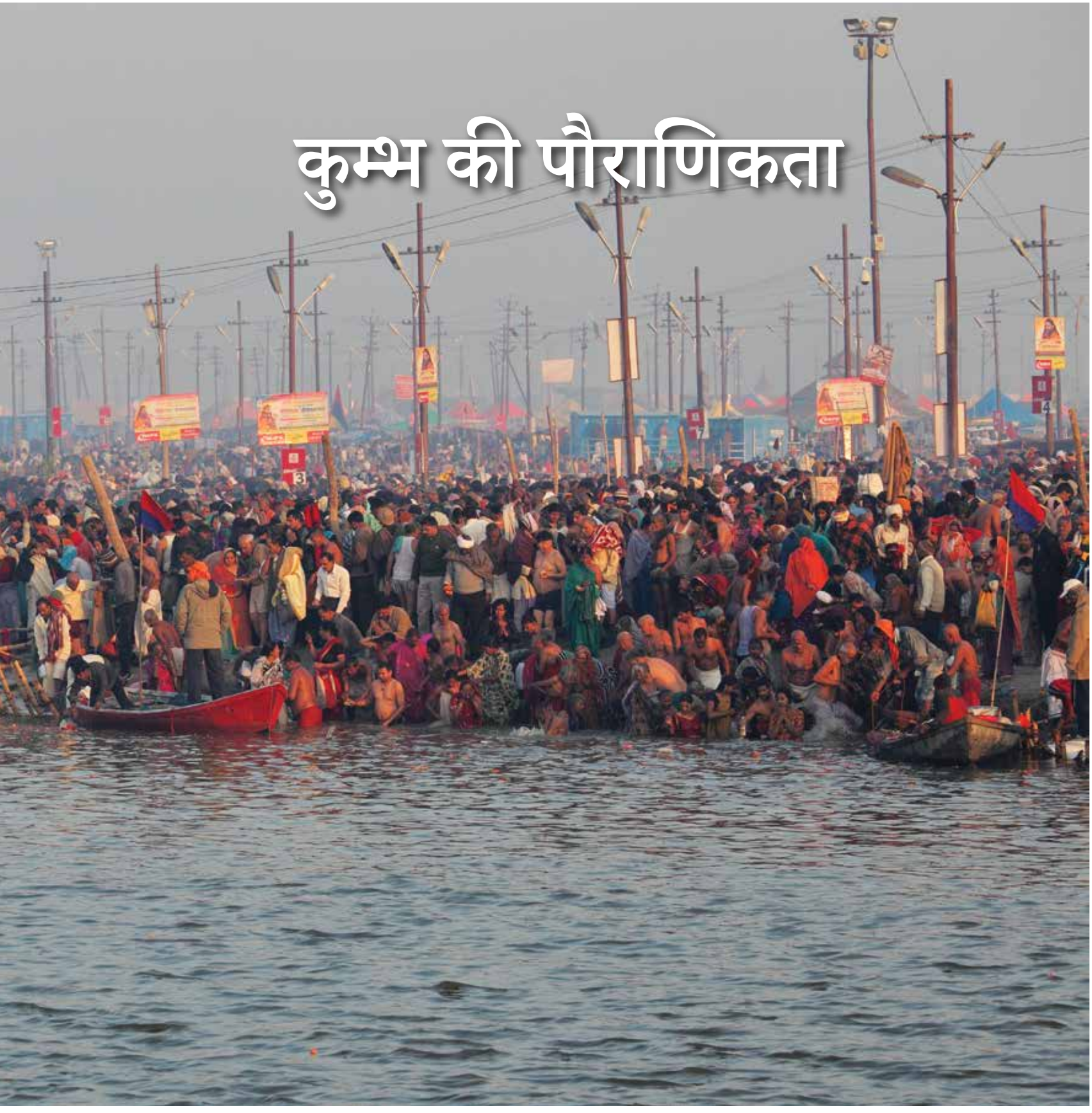

भगवान शिव की योग अवस्था का चित्र-सौजन्य से: राजा रवि वर्मा हेरिटेज फाउण्डेशन तथा संदीप एण्ड गीतांजलि मैनी फाउण्डेशन

प्रयागराज में गंगातट पर मौनी अमावस्या को स्नान करते साधु समूह

कुम्भ पर्व का महत्व और उसकी कल्पना शिव जी, और प्रयाग जी और गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम की व्याख्या के बिना अधूरी है। शिव, प्रयाग और संगम के बिना कुम्भ पर्व को नहीं जाना जा सकता है। क्योंकि समुद्र मंथन की कथा के अनुसार समुद्र से निकलने वाले विष को शिव जी ने ही पीकर अपने गले में रोका था और इसी समय से उनका एक नाम नीलकंठ हो गया।

स्कन्द पुराण के अध्याय "शिव पूजन माहात्म्य वर्णन" के अनुसार भगवान 'हर' के भक्तों के लिए इस त्रिलोकी में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। वह बहिः प्रवृत्ति का तथा ज्ञानेन्द्रिय

भगवान शिव के वेश-भूषा में पावन स्नान के लिए आया एक साधु

नागा बाबा का फोटो खींचता एक भारतीय फोटोग्राफर

तथा कर्मेन्द्रियों का ग्रहण करके नित्य ही भगवान सदाशिव में लय को प्राप्त हो जाता है। यह अन्तर्याग कहा जाता है। यह भगवान शिव ने ही स्वयं गान किया था, क्योंकि बहिर्योग अत्यन्त दुष्कर होता है। भगवान ईशान की आराधना द्वारा मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लिया करता है। समस्त प्रकार के पापों का क्षय हो जाने पर भगवान शिव में भावना उत्पन्न करता है।

इस महापुण्यमय भारत देश की भूमि में जन्म ग्रहण करना ही अत्यन्त दुर्लभ होता है, उसमें भी भगवान शिव का पूजन करने का अवसर प्राप्त करना परम दुर्लभ होता है। भगवान

शिव के पूजन से ब्रह्महत्या आदि महापापों से मनुष्य छुटकारा पाते हैं।

स्कन्द पुराण में ही कहा गया है कि भगवान शिव की भक्ति करने वाले महात्मा पुरुषों के लिए इस संसार में तो क्या, त्रिलोकी में भी कुछ भी दुर्लभ, दुष्प्राप्य और असाध्य नहीं है। स्कन्द पुराण आगे कहता है कि ऐसा कौन सा पुरुष है जो शंकर को नमन नहीं करेगा? जिसकी इच्छा से ही यह सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न होता है, विशेष रूप से अवस्थित रहा करता है तथा अन्तर्लय को प्राप्त हुआ करता है ऐसे उस ईश्वर की शरणागति में कौन जाकर प्राप्त नहीं होगा? यहां पर भगवान शिव का पूजन ही करना चाहिए जिसकी अन्तराय पदवी को लोक प्राप्त हुआ करते हैं, शिव को नमन करने वाला मनुष्य तुरन्त ही भगवान शिव की सन्निधि को प्राप्त कर लिया करता है - यह सत्य है।

लिंग पुराण में भगवान शिव के विराट रूप का वर्णन किया गया है। यहां ऋषियों ने कहा कि - हे सूत जी, आपने भगवान शंकर के सुव्यक्त सम्पूर्ण स्वरूप का निरूपण तो भलीभांति कर दिया है, अब समष्टि रूप रूद्र का स्वरूप वर्णन करने के आप योग्य हैं। सूत जी ने कहा कि भूलोक, भुवः, स्वर, महः, जनः तप और सत्य लोक तथा पाताल और नर कार्णव, कोटि एवं तारक, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, ध्रुव सप्तर्षिगण तथा अन्य वैमानिक सभी कुछ इन्हीं भगवान, रूद्र के प्रसाद से संस्थित रहा करते हैं, ये सभी इन्हीं भगवान शिव के द्वारा निर्मित हैं और तद्रूप हैं। समष्टि स्वरूप वाले सबकी आत्मा अर्थात सबके अन्तर्यामी शिव सर्वदा इन सबमें विद्यमान रहते हैं। भगवान शिव ही समस्त सृष्टि का विस्तार करते हैं।

कुम्भ पर्व के महत्व को गंगा, यमुना, सरस्वती के प्रयाग में संगम की चर्चा के बिना समझ पाना मुश्किल है। मत्स्य पुराण (सटीक) के अनुसार प्रयाग में जन्म लेने वाला सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। सूर्य की पुत्री यमुना देवी जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है वह जिस स्थान पर प्रयाग में आई हैं उसी स्थान पर साक्षात महादेव जी स्थित हैं।

मत्स्य पुराण (सटीक) में ही प्रयाग माहात्म्य बताते हुए मार्कण्डेय जी युधिष्ठिर को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि यह प्रयाग जी का पुण्य मनुष्यों को महादुर्लभ है, हे राजेन्द्र देवता! दैत्य, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण यह सब प्रयाग जी का स्पर्श करके स्वर्ग में प्राप्त होते हैं।

मार्कण्डेय जी आगे कहते हैं कि - हे राजा! इसके सिवाय और भी प्रयाग जी का माहात्म्य तुमसे कहता हूँ जिसके सुनने से निःसन्देह मनुष्य सब पापों से छूट जाता है, मुरत्य करके पीड़ित दरिद्री और निश्चल बुद्धि वाले ऐसे पुरुषों के निमित्त तो प्रयाग जी

महाकुम्भ मेला पर एक साधु अपने लिबास में

का स्थान अत्यन्त ही लाभ और पुण्यदायी है। व्याधि वाला अथवा दीन और वृद्ध पुरुष जो गंगा-यमुना के मध्य में प्राणों को त्यागता है वह दीप्त सुवर्ण के समान वर्ण वाले व सूर्य के समान कान्ति वाले विमानों में बैठकर वांछित मनोरथों को प्राप्त करता है।

श्रेष्ठ ऋषियों का कथन है कि पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से पतित होकर अनेक दिव्य रत्नों की समृद्धि वाले उत्तम कुल में जन्म लेता है। जो मनुष्य अपने देश में, अरण्य में, विदेश में अथवा अपने घर में भी बैठा हुआ प्रयाग जी का स्मरण करके प्राणों को त्यागता है वह ब्रह्मलोक में प्राप्त होता है। मत्स्य पुराण में आगे कहा गया है कि इस तीर्थ पर शक्ति के अनुसार दान करने से तीर्थ का फल बढ़ता है और प्रलय काल तक स्वर्ग में वास होता है, जो पुरुष प्रयाग जी में अक्षयवट के समीप जाकर अपने प्राणों को त्याग करता है। वह सब लोकों को उल्लंघन करके शिव जी के लोक में प्राप्त होता है वहां स्नान करके स्वर्ग में प्राप्त होते हैं। मरण होने से पुनर्जन्म नहीं होता और वहां वास करने वालों की रक्षा ब्रह्मादिक देवता करते हैं।

श्री गंगा जी की रक्षा साठ हजार धनुष करते हैं, यमुना जी की रक्षा सूर्य करते हैं और प्रयाग जी की रक्षा इन्द्रदेव करते हैं और प्रयाग जी के मंडल की रक्षा देवताओं समेत भगवान विष्णु करते हैं। प्रयाग के

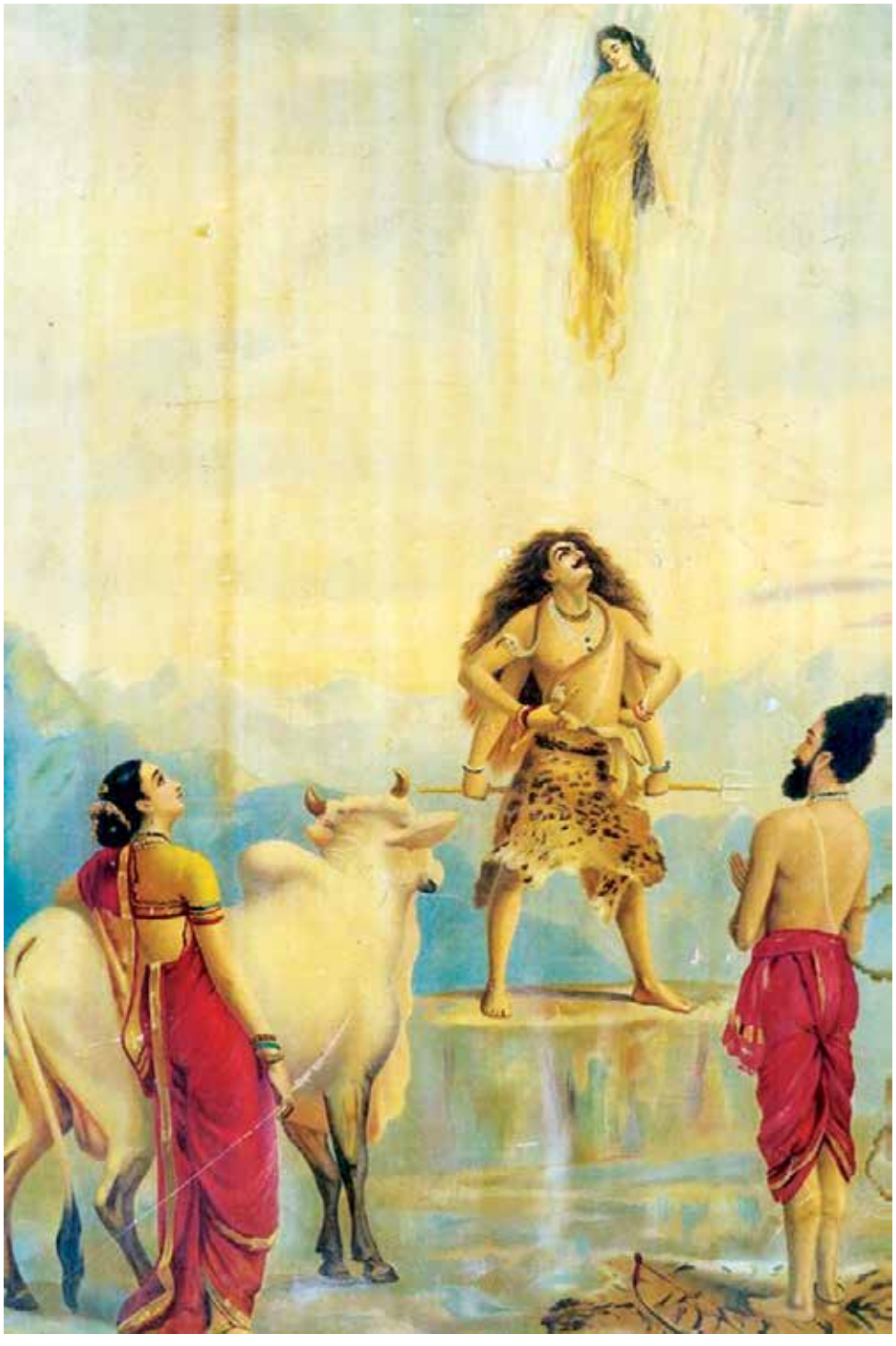

गंगा-अवतरण का चित्र - सौजन्य से: राजा रवि वर्मा हेरिटेज फाउण्डेशन तथा संदीप एण्ड गीतांजलि मैनी फाउण्डेशन

अक्षयवट की रक्षा तो शिव जी करते हैं। देवता लोग सब पापों के हरने वाले स्थान की रक्षा करते हैं। यदि किसी का अल्प पाप होगा तो वह प्रयाग जी का स्मरण करते ही नष्ट हो जाएगा।

प्रयाग माहात्म्य बताते हुए आगे कहा गया है कि प्रयाग जी में पांच कुण्ड हैं और उनके मध्य में गंगा जी हैं, प्रयाग में प्रवेश करते ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं। हजार योजन से ही गंगा जी के स्मरण करने से पाप क्षय हो जाते हैं, उनके नामोच्चारण से दुष्कृत कर्म करने वाले भी परम गति को प्राप्त हो जाते हैं, स्नान करने से और जलपान करने से स्वयं के समेत सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है। मनुष्य, गंगा-यमुना संगम का माहात्म्य बताते हुए कहा गया है कि गंगा-यमुना के मध्य में स्नान करके दुखों से छूट कर मन के विचारे हुए उत्तम कामों को प्राप्त होता है। जो मनुष्य सब देवताओं से रक्षित प्रयाग जी में जा कर ब्रह्मचर्य धारण कर एक महीने तक वास करके देवता और पितरों का तर्पण करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करता है।

गंगा-यमुना के संगम का माहात्म्य बताते हुए मत्स्य पुराण में कहा गया है कि जो मनुष्य मन, वाणी और कर्म से सत्य धर्म में स्थित होकर गंगा-यमुना के मध्य गो दान करता है और सुवर्ण, मणि मुक्तादिक पदार्थों

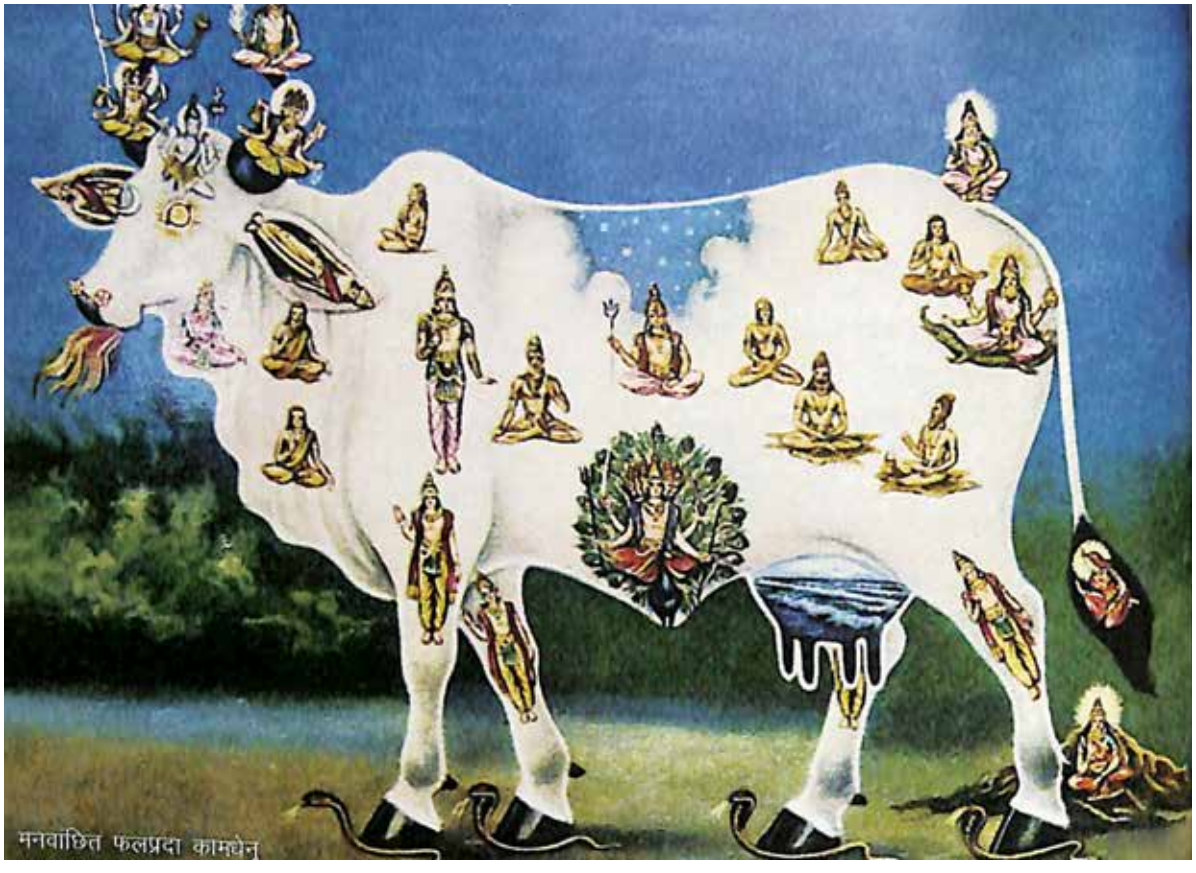
मनवांछित फलप्रदा कामधेनु

को अपने व देव पितृकर्म में अथवा देव पूजन में दान करता है उसका वह तीर्थ सफल होकर यथार्थ पुण्य को प्राप्त कराता है।

इसी में कहा गया है कि - हे राजा शार्दूल, गंगा-यमुना के मध्य पृथ्वी की जंघा कहीं है उसी को प्रयाग कहते हैं और वही त्रिलोकी में प्रसिद्ध है। श्री गंगा जी पृथ्वी पर तो मनुष्यों का उद्धार करती हैं, पाताल लोक में नागों का उद्धार करती हैं और स्वर्ग में देवताओं का उद्धार करती हैं, इसी से यह त्रिपथगामिनी गंगा जी कहलाती हैं। प्राणियों की जितनी हड्डियां गंगा जी में पहुंच जाती हैं वह उतने ही हजार वर्षों तक वह प्राणी स्वर्ग में वास करता है। यह गंगा सब तीर्थों में उत्तम है, नदियों में उत्तम नदी है, महापातक वाले सम्पूर्ण प्राणियों को मोक्ष देने वाली है। गंगा जी सब स्थानों में सुगम हैं परन्तु गंगाद्वार, प्रयाग और गंगासागर संगम इन तीन तीर्थों पर प्राप्त होनी दुर्लभ है।

देवी भागवत पुराण - अध्याय - 70

श्लोक - 5 -6 (प्रयाग की महत्ता)

अग्निकोणमुखी प्रायात्सरिद्भिः सङ्तापगा।

प्रयागदेशमागत्य सार्धं यमुनया शिवा ।। 5 ।।

सरस्वत्या च समिश्रा समभूमुनिपुङ्व।

तत्र भागीरथी पूण्या देवानामयि दुर्लभा ।। 6 ।।

मुनि श्रेष्ठ! शिवा भगवती गंगा प्रयाग में आकर यमुना और सरस्वती के साथ मिल गई। प्रयाग में पूज्यमयी भागीरथी गंगा देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। मुने! वहां किए गये स्नान, तप एवं दान पुण्य से भी पुण्यतर है। वहां ब्रह्मादि तथा सभी सुराधीश स्नान कर गंगा माहात्मय के विषय में श्रीमद् भगवद्गीता में दशम् अध्याय को विभूति योग के नाम से जाना जाता है। इसी अध्याय के 31वें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी विभूतियों के वर्णन में कहा है कि -

- 'स्रोतसामास्मि जान्हवी' -

अर्थात् भगवान कहते हैं कि नदियों में मैं गंगा हूँ।

- स्कन्द पुराण में -

सितासिता सप्ति यत्र सांगे

तत्रा प्लुता सा दिवमुत्पतंति

यावे तन्व विसृजन्ति धीरा।

वे जना सा मृतम् भजन्ति

- श्रीमद् भागवत पुराण पंचम स्कन्ध 17वां अध्याय, नवम् श्लोक में कहा गया है कि-

यस्याम् स्नानार्थं पानार्थं व गच्छत्:
पुंस: पदे पदे।
अश्वमेध राजसूयादिनाम् फलम् ना दुर्लभमित्ति

अर्थात् मां गंगा में स्नान व उसके जल का पान करने वालों को अश्वमेध व राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

ते नाग राज मान्त्रय, फल
भागेन वासुकिम्।
परिवीय गिरौ तस्मिन नेत्र
मब्धिम् मुदान्विता: ॥ 1 ॥
आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्धह।
हरि: पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवातास्ततोडभव ॥ 2 ॥
-अष्टम स्कन्ध, सप्तम अध्याय

अर्थात्
श्री शुकदेव जी कहते हैं परीक्षित देवता और असुरों ने नागराज वासुकि को यह वचन देकर समुद्र मंथन से प्राप्त होने वाले अमृत में तुम्हारा भी हिस्सा रहेगा, उन्हें भी सम्मिलित कर लिया। इसके बाद उन लोगों ने वासुकी नाग को नेति के समान मंदराचल पर्वत में लपेटकर भली भांति उद्यत हो बड़े उत्साह और आनन्द से अमृत के लिए समुद्र मंथन प्रारम्भ किया।

कुम्भ कथाएं

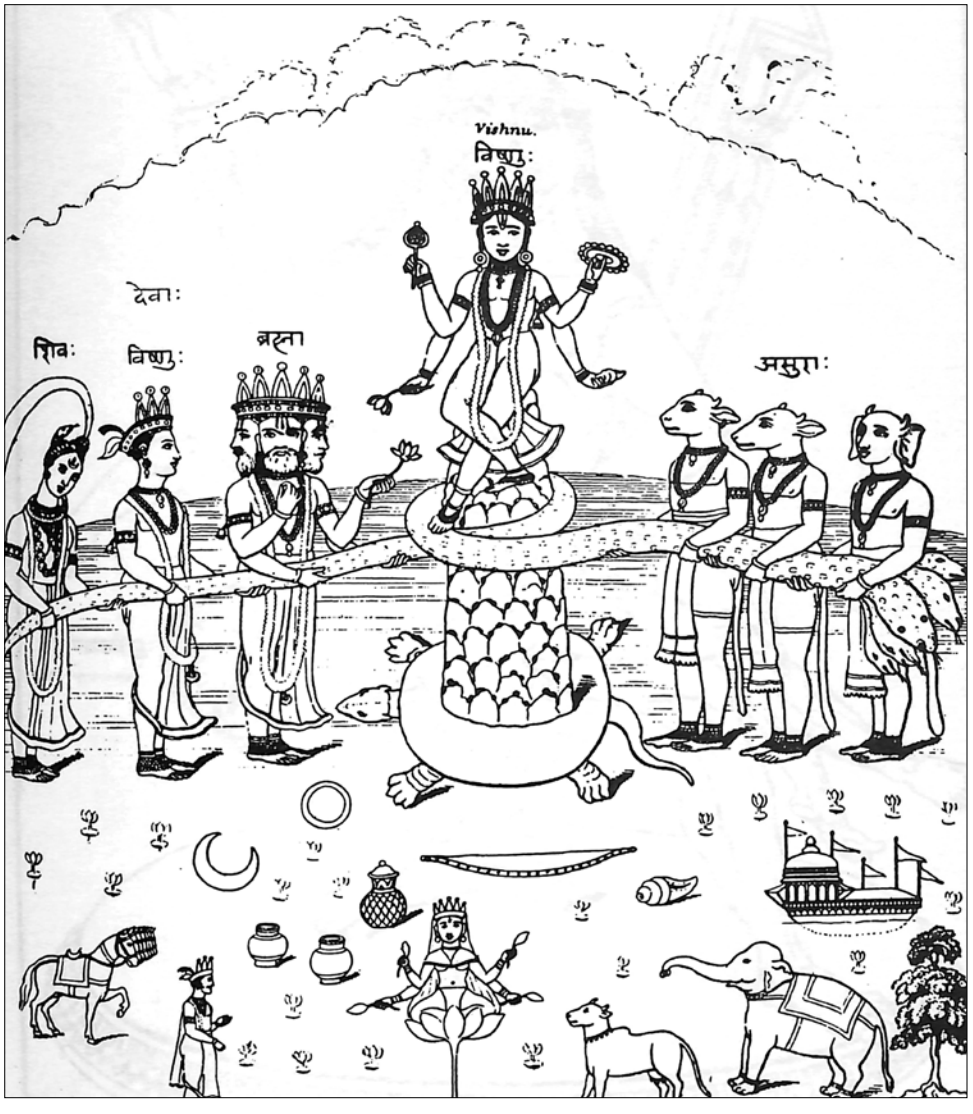

समुद्रमन्थन के दौरान भगवान विष्णु अपने कूर्मा अवतार में

मान्यता है कि मंदराचल पर्वत के द्वारा सागर मंथन से ही इस संसार की संरचना हुई है। यह कथा देवताओं और असुरों, धर्म और अधर्म, प्रकाश और अंधकार के बीच हुए संघर्ष पर आधारित है।

यह उस समय की बात है जब अंधकार युग (कलियुग) समाप्ति की ओर था और मनुष्य धर्मपरायणता में असफल हो रहा था। उनका अमृत भी महाजलप्रलय में लुप्त हो चुका था जिसने देवताओं व मनुष्यों को दुर्बल कर दिया था।

शेषनाग पर आसीन भगवान विष्णु व लक्ष्मी

इस समस्त दृष्टांत पर देवताओं ने चिंतित होकर मेरू पर्वत पर सभा बुलाई व ब्रह्मा जी से सहायता मांगने का विचार बनाया। ब्रह्मा जी ने कहा हम सबका प्राणाधार अमृत सागर तल पर कहीं लुप्त हो गया है और जिस प्रकार दूध से मक्खन निकाला जाता है उसी प्रकार दिव्य अमृत को पाने के लिए सागर पानी को मथना पड़ेगा। इसलिए आप सब भगवान विष्णु के पास जाइये, वे आपकी सहायता करेंगे।

इस पर देवताओं ने भगवान विष्णु के सहस्र नामों का उच्चारण कर उन्हें प्रसन्न किया,

देवासुर समुद्रमन्थन

प्रसन्न होने पर भगवान विष्णु ने कहा अमृत देवताओं को पुनर्जीवन देगा परन्तु इस अमृत को प्राप्त करने के लिए देवताओं व असुरों को आपस में सहयोग करके सागर को मथना पड़ेगा। भगवान विष्णु ने भ्रमित हो रहे देवताओं को पुनः आश्वस्त किया कि वे उनमें अपनी आस्था बनाये रखें।

नागों के राजा वासुकि ने अपने शरीर को मंदराचल पर्वत के चारों ओर रस्सी की तरह लपेट दिया। इसके पश्चात् देवताओं ने वासुकि की पूँछ को और असुरों ने उसके मुख को पकड़ कर बारी-बारी से आगे-पीछे खींचना शुरू किया जिससे मंदराचल पर्वत मथानी की तरह सागर को मथने लगा।

एक हजार वर्ष तक सागर को मथने के पश्चात् मंदराचल सागर के अथाह गहरे तल को मथता हुआ उसके भीतर जाने लगा तब श्री हरि भगवान विष्णु ने कूर्म (कच्छप) का रूप धारण किया, जो आकार में किसी द्वीप के समान था। उस कच्छप ने गहरे सागर तल पर जाकर मंदराचल पर्वत को सहारा प्रदान किया।

सागर मंथन के समय उसमें से चौदह अमूल्य रत्न निकले, जैसे - चन्द्र, कौस्तुभ मणि (भगवान विष्णु के वक्षःस्थल का आभूषण), कल्प वृक्ष, शंख, धनुष, कामधेनु गाय, देवताओं के राजा इन्द्र की सवारी ऐरावत हाथी, उच्चैश्रवा नामक

नारायण तिरुमाला स्थित भगवान विष्णु का कूर्मावतार स्वरुप

अश्व, चन्द्र का प्रकाश लिए असुरों का राजा बलि, आकर्षक दिव्य अप्सरा-रंभा, सुरा देवी वारुणी, कमल धारण किए हुए धन-धान्य की देवी लक्ष्मी, जिन्हें तीनों लोकों के स्वामी भगवान विष्णु अपनी शक्ति कहते हैं।

"श्री मणि रंभा वारूणी अमिय शंख गजराज।
कल्पद्रुम धनु धेनु शशि धन्वन्तरि विष बाज"।।

अंत में आयुर्वेद के जनक और देवताओं के चिकित्सक धन्वन्तरि जिन्हें भगवान विष्णु के अनेक रूपों में एक कहा जाता है, हाथों में अमृत भरा हुआ कलश लेकर सागर से प्रकट हुए, उन्हें देखते ही देवताओं और असुरों ने मथने की रस्सी छोड़कर अमृत कलश पाने के लिए धन्वन्तरि की ओर दौड़ लगाई।

देवराज इन्द्र ने अपने पुत्र जयन्त को निर्देश दिया कि वो अमृत कलश को प्राप्त करके उसकी रक्षा करें। आदेशानुसार जयन्त ने कुम्भ (अमृत कलश) को प्राप्त किया और पूरे ब्रह्माण्ड में दौड़ने लगा, साथ ही असुरों ने भी बारह दिनों तक उसका पीछा किया। जयन्त ने बारह बार रूक-रूक कर विश्राम किया जिसमें चार बार पृथ्वी, चार बार स्वर्ग व चार बार पाताल लोक हैं।

प्रत्येक विश्राम-स्थल पर अमृत की कुछ बूंदें छलक गयीं। पीछा करते हुए असुरों ने अमृत कुम्भ को छीन लिया और आपस में ही द्वंद्व करने लगे कि उनमें से पहले कौन अमृतपान करेगा, इसी द्वंद्व के मध्य में मोहिनी-एक दिव्य सौन्दर्य की स्वामिनी व जिसका वर्णन शब्दों में भी नहीं किया जा सकता, प्रकट हुई। मोहिनी के आकर्षक सौन्दर्य को देखकर असुरों की मति फिर गयी और उनमें से एक ने अमृत कलश लेकर मोहिनी से कहा कि अब आप ही निर्धारित करिये कि हम लोगों में अमृत किस प्रकार बांटा जाय।

मोहिनी मुस्कुराई और असुरों ने उसके द्वारा होने वाले निर्णय पर अपना विश्वास जताया। मोहिनी ने कहा कि देवताओं और असुरों ने एक समान कठिन परिश्रम किया है, इसलिए दोनों पक्षों का अमृत पर अधिकार भी समान होना चाहिए। उसने दोनों पक्षों को दो पंक्तियों में विभाजित किया और अपनी आँखें बन्द कर लेने को कहा। भगवान विष्णु के इस अवतरित मायावी रूप ने कलश लेकर सर्वप्रथम देवताओं को अमृत परोसा। समस्त देवताओं

ऋषि दुर्वासा

को अमृत परोसने के पश्चात् मोहिनी अन्तर्ध्यान हो गयी। जब असुर मतिभ्रम से जागे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि वे तो छले गये हैं। अमृत से देवताओं ने पुनः अपने को शक्तिशाली बनाया व चल रहे संघर्ष में भी विजय प्राप्त की जिससे ब्रह्माण्ड में धर्म की पुनः उचित स्थापना हुई।

इसी संघर्ष के बीच राहु वेष बदलकर चुपके से देवताओं की पंक्ति में प्रविष्ट हो गया था और इससे पहले कि वह पहचाना जाता उसने अमृत की एक बूँद प्राप्त कर ली। विष्णु ने तत्काल अपना सुदर्शन चक्र चलाया जिसने उस असुर का सिर धड़ से अलग कर दिया जिससे अमृत उसके शरीर में नहीं पहुँच पाया। राहु का मृत शरीर गिर पड़ा परन्तु चक्र ने उसके न मरने वाले सिर को अंतरिक्ष में उछाल दिया। अब राहु बदला लेने वाला एक ग्रह बनकर सूर्य और चन्द्र के मध्य रहने लगा। धार्मिक मान्यता के अनुसार राहु का सूर्य और चन्द्र को ग्रास बनाने के प्रयास के कारण ग्रहण भी लगता है।

देवताओं के बारह दिन और मनुष्य के बारह वर्ष एक समान हैं, इसलिए कुम्भ पर्व हर बारह साल पर आयोजित होता है। ग्रहों के देवता सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति ने जयन्त की रक्षा की व अमृत कलश को भी सुरक्षा प्रदान की। अंतरिक्ष शास्त्र के अनुसार ये तीनों (सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति) कुम्भ पर्व पर एक साथ उपस्थित होकर मनुष्य जाति को अपना आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

भारत में हरिद्वार, प्रयाग (इलाहाबाद), नासिक व उज्जैन की इन चार क्रमशः पवित्र नदियों - गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम, गोदावरी एवं क्षिप्रा में अमृत छलका था, इसलिए ये चारों स्थान पवित्र कुम्भ पर्व के केन्द्र माने गये हैं।

महर्षि दुर्वासा का शाप व समुद्र मंथन

श्रीमद्भागवत में महर्षि दुर्वासा की कथा का एक संक्षिप्त उल्लेख मिलता है- देवताओं के राजा इन्द्र को महर्षि दुर्वासा द्वारा अपनी माला उपहार में दिये जाने पर इन्द्र ने उसे अपनी सवारी ऐरावत हाथी के

गरुड़ पर विनता व कद्रु के साथ आसीन भगवान विष्णु

मस्तक पर फेंक दिया जिसे ऐरावत ने अपने पैरों से कुचल दिया। महर्षि दुर्वासा ने इसे अपना अपमान समझकर इन्द्र को श्री विहीन होने का शाप दे डाला। परिणामस्वरूप इन्द्र युद्ध में राक्षसों से पराजित हो अपनी शक्ति, वैभव व राज्य खो बैठे। तदुपरान्त भगवान श्री नारायण से प्रार्थना करने पर उन्हें समुद्र की गहराई में छिपे अमृत को निकालने के लिए समुद्र मंथन की युक्ति सुझाई गयी।

इस कथा का एक और विस्तार हमें महाभारत और संक्षिप्त महाभारत में भी मिलता है जिसमें भगवान विष्णु और ब्रह्मा का सुमेरू पर्वत पर अमृत के आविष्कार के लिए एकत्र होना बताया गया है, जहां भगवान विष्णु ने देवताओं और दानवों को समुद्र दोहन के लिए मंदराचल पर्वत को मथानी तथा वासुकि नाग को रस्सी बनाकर समुद्र को मथने का सुझाव दिया। भगवान विष्णु ने स्वयं कच्छप का रूप धारण कर मंदराचल पर्वत को आधार प्रदान किया व उसका संतुलन बनाये रखने का कार्य किया।

समुद्र मथने पर समुद्र की अथाह जलराशि का रंग दूध के समान श्वेत हो गया। मंथन से प्राप्त चौदह रत्नों के क्रम में भगवती लक्ष्मी, सुरा देवी, चन्द्रमा और अंत में भगवान धन्वन्तरि अमृत भरा श्वेत कलश हाथों में लिये समुद्र से प्रकट हुए।

अमृत के साथ लौटते हुए गरुड़

कद्रु और विनता की कथा

मत्स्य पुराण और विष्णु पुराण में सात द्वीपों का वर्णन मिलता है - जम्बू द्वीप, शाक द्वीप, कुश द्वीप, क्रौंच द्वीप, शाल्मल द्वीप, गोमेद द्वीप और पुष्कर द्वीप जिनमें शाक द्वीप के वर्णन में मत्स्य पुराण के अनुसार इस द्वीप में सात बड़ी नदियां हैं जो पवित्रता में गंगा के समान हैं। पहले समुद्र में मणियों से सुशोभित सात पर्वत हैं, उनमें से कुछ पर देव और कुछ पर दानव रहते हैं। इनमें से एक सोने का ऊँचा पहाड़ है जहां से वर्षा लाने वाले मेघ उठते हैं, दूसरे औषधियों का भण्डार है, राजा इन्द्र इनसे वर्षा लेता है।

कद्रु-विनता की कथा समुद्र मंथन से प्राप्त कलश में रखे अमृत प्राप्ति के बाद की घटना से सम्बन्धित है :- महर्षि कश्यप सप्तऋषियों में से एक थे। उनकी 13 पत्नियों में दो पत्नियां कद्रु और विनता जुड़वां बहनें थीं, कद्रु सांपों की माता थीं और विनता पक्षियों और गरुड़ की माता थीं। यह दोनों बहनों में आपसी मतभेद को लेकर शर्त लगाकर दासी होने और उससे छुटकारे के लिए देवताओं द्वारा छुपाये गये अमृत की खोज से सम्बन्धित कथा है।

दोनों बहनें एक मैदान में रहती थीं, उन्होंने भ्रमण करते समय आकाश मार्ग से जाते हुए सात मुँह वाले श्वेत अश्व को देखा और उसके पूँछ के रंग को लेकर शर्त लगायी। कद्रु ने पूँछ का रंग काला होने की बात कही और विनता ने पूँछ का रंग सफेद बताया। अब उन्होंने शर्त लगायी कि जिसकी बात असत्य निकले वह दूसरी की दासी बनकर रहेगी। परन्तु उन्होंने निर्णय अगले दिन पर छोड़ दिया।

रात को सांपों की माता ने अपने काले बच्चों को घोड़े के पास भेजा ताकि वे उसकी पूँछ पर लिपटकर उसके रंग को छिपा दें। इसका परिणाम यह हुआ कि कद्रु के सर्पपुत्रों ने घोड़े की पूँछ पर लिपटकर उसके काला होने का भ्रम उत्पन्न कर दिया जिससे कद्रु जीत गयी और विनता को दासी बनना पड़ा।

माँ को दासत्व से मुक्ति दिलाने के लिए उसके पुत्र गरुड़ ने अमृत खोज कर सर्पों को देने की बात स्वीकार कर ली। अमृत को देवताओं के राजा इन्द्र ने संरक्षित कर रखा था। वो गरुड़ को अमृत कलश इस बात पर देने को सहमत हो गये कि वे इसे सर्पों को नहीं पिलायेंगे, परन्तु गरुड़ ने अमृत कुम्भ सर्पों को सौंपकर अपनी माँ को दासत्व से मुक्ति दिलायी। इसके बाद गरुड़ ने सर्पों से कहा कि जब तक तुम गंगा में स्नान न कर लो, अमृत के निकट न आना। सर्प स्नान करने चले गये। इसी बीच में गरुड़ इसे देवों के पास वापस ले आया, जिससे उसकी पवित्रता की पदवी बहुत ऊँची हो गयी, और वह सब पक्षियों का राजा और विष्णु का वाहन बन गया।

प्रयाग और आदि शंकराचार्य

आदि शंकराचार्य व उनके शिष्य

आठवीं-नवीं शताब्दी ईसवी में भारत से बौद्ध धर्म और जैन धर्म का पतन हो गया और शंकराचार्य के योगदान से सनातन धर्म का पुनरुत्थान हुआ।

शंकराचार्य का जन्म केरल प्रान्त के अलवर नदी (मालाबार तट) के उत्तरी किनारे पर स्थित कलादी नामक ग्राम में 788 ई. के लगभग हुआ। इनके पिता शिव गुरु नम्बुदिरि ब्राह्मण थे तथा उनकी माता का नाम आर्यम्बा था।

जब शंकराचार्य मात्र 03 वर्ष के थे, तभी उन्होंने अपनी मातृभाषा मलयालम का ज्ञान भलीभांति प्राप्त कर लिया था। 5 वर्ष की आयु में उनका उपनयन संस्कार हुआ और उनको

शिक्षा के लिए गुरुकुल भेजा गया। 2 वर्षों में ही उन्होंने सम्पूर्ण वेदों तथा शास्त्रों का अध्ययन कर लिया। 8 वर्ष की आयु में अपनी माता की आज्ञा लेकर उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया।

गृहत्याग के पश्चात् सर्वप्रथम शंकराचार्य नर्मदा नदी के तट पर आये जहां गौड़पाद के शिष्य गोविन्दयोगी को उन्होंने अपना प्रथम गुरु बनाया। दीक्षा के उपरान्त गुरु ने इन्हें परमहंस की उपाधि प्रदान की।

अपने गुरु गोविन्दयोगी से आज्ञा लेकर अपने ज्ञान के प्रचार हेतु सर्वप्रथम शंकराचार्य काशी गये। उनकी ख्याति चतुर्दिक फैल गयी। शंकराचार्य ने कश्मीर से कन्याकुमारी तक के विभिन्न तीर्थस्थलों का व्यापक भ्रमण किया। बौद्ध, जैन, कापालिक, स्मार्त तथा अन्य अनेक सम्प्रदायों के आचार्य के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। नर्मदा नदी के तट पर महिष्मती में मण्डन मिश्र तथा उनकी पत्नी के साथ शास्त्रार्थ हुआ इन दोनों ने अपनी पराजय स्वीकार की।

एक मत के अनुसार प्रयाग में प्रख्यात दार्शनिक कुमारिल से भी शंकराचार्य का शास्त्रार्थ हुआ था। शंकराचार्य के जीवनीकार आनन्द गिरि ने लगभग 50 सम्प्रदायों के आचार्यों का उल्लेख किया है जिनसे उनका शास्त्रार्थ हुआ था। सभी को शंकराचार्य ने पराजित कर अपनी आध्यात्मिक दिग्विजय का लक्ष्य पूरा किया।

शंकराचार्य वेदान्त के सर्वाधिक प्रभावशाली प्रतिपादक थे। वेदान्त का उनका संस्करण अद्वैतवाद कहलाता है। उपनिषदों से ही वेदों का अन्त होता है। इसलिए उन्हें तथा उन पर आधारित दर्शन को वेदान्त कहा जाता है जिसे उत्तर मीमांसा भी कहा जाता है। उपनिषदों पर आधारित वेदान्त दर्शन की चर्चा की गयी जिसमें बादरायण का ब्रह्मसूत्र तथा भगवद् गीता भी शामिल हैं। अद्वैत वेदान्त की व्याख्या औपचारिक रूप से सर्वप्रथम सातवीं-आठवीं शताब्दी में गौड़पाद के माण्डूक्यकारिका में मिलती है जो माण्डूक्योपनिषद पर लिखी गयी एक पद्यात्मक टीका है। गौड़पाद, माध्यमिक तथा विज्ञानवाद, बौद्धधर्म से प्रभावित मालूम पड़ते हैं। उनका मानना था कि संसार की घटनाएं एक स्वप्न के समान हैं। सत्य एक है (अद्वैत) तथा अनेकत्व का बोध, माया (भ्रम) से उत्पन्न होता है।

गौड़पाद के विचारों ने शंकर में पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त की जिन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों का दर्शन व्यवस्थित एवं एकीकृत है। शंकर के अनुसार वैदिक यज्ञों को सम्पन्न करना उनके लिए आवश्यक था जिन्हें भौतिक एवं सांसारिक वस्तुओं की चाह थी, जबकि उपनिषदों में परमज्ञान का मार्ग निहित है।

राजा रविवर्मा फाउनडेशन तथा संदीप एण्ड गीतांजली मैनी फाउनडेशन बंगलुरु के सौजन्य से।

उनके अद्वैतवादी सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म ही अन्तिम सत्य है, जो निर्गुण है, वह शुद्ध चेतना है, शाश्वत और अपरिवर्तनशील है। सभी परिवर्तन और अनेकत्व केवल बाह्य तौर पर दृश्य है। शंकर ने सत्य के केवल दो स्तरों को रेखांकित किया- पारंपरिक यथार्थ तथा परम सत्य। इस विचार की व्याख्या करते हुए एक व्यक्ति द्वारा पड़ी हुई रस्सी को साँप समझने के भ्रम का उदाहरण दिया। यद्यपि रस्सी साँप के समान दिखायी पड़ती है पर वह है नहीं। इस पारम्परिक सत्य को पूर्ण सत्य समझने की भूल अविद्या के कारण होती है। अद्वैत वेदान्त का उद्देश्य जीवन चक्र से मुक्ति है, जब आत्मा का ब्रह्म से एकाकार हो जाता है। शंकर के अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म केवल एक है और वही सत्य है।

नौवीं शताब्दी के महान दार्शनिक शंकराचार्य ने अपने अद्‌भुत व्यक्तित्व से हिन्दू धर्म को संगठित करने का प्रयास किया। इन्होंने बहुचर्चित चार मठों की स्थापना की। उत्तर में ज्योर्तिमठ, दक्षिण में श्रृंगेरीमठ, पूर्व में गोवर्धन मठ और पश्चिम में शारदामठ। अद्वैतवाद को बढ़ावा देने हेतु इन केन्द्रों को दशनामी के अन्तर्गत विभाजित किया जैसे सरस्वती, पुरी, वाण, तीर्थ, गिरी, पर्वत, भारती, अरण्य, आश्रम और सागर। प्रत्येक केन्द्र के लिए उन्होंने एक को नामित किया जिसके मार्गदर्शन में साधु कार्य करेंगे। ये साधु दो उद्देश्यों के लिए नियमित रूप से कुम्भ मेला में एकत्रित होंगे-पहला उद्देश्य भिन्न मतों के साधुओं से सम्पर्क बनाएंगे, दूसरा-आध्यात्म की इच्छा रखने वाले साधुओं को एकत्रित करेंगे।

इन लोगों ने बहुत उत्साहजनक प्रतिक्रिया दी, क्योंकि इन्हें दो अवसर प्रदान किया गया था। पहला, साधुओं के माध्यम से प्रेरणा प्राप्त करना दूसरा, मोक्ष प्राप्ति हेतु पवित्र नदियों में स्नान करना।

कामा मैकलीन के अनुसार ''विभिन्न भागों के पवित्र लोगों को मिलवाने/एकत्रित करने के उद्देश्य से अखाड़ों का कुम्भ मेला प्रयाग में प्रारम्भ आदि शंकराचार्य द्वारा आठवीं शताब्दी में किया गया।'' जबकि विद्वानों का इस सम्बन्ध में मतभेद है। यह माना जाता है कि शंकराचार्य ने दशनामी सम्प्रदाय चार/पांच मठों के लिए की। यद्यपि यह स्पष्ट है कि आदि शंकराचार्य की शिक्षाओं को संरक्षित करने और प्रचारित करने के उद्देश्य से बनाया गया। बहुत सारे इतिहासकारों का इस सम्बन्ध में मत-विभेद है कि मठों की स्थापना (श्रृंगेरी और कांची) अनेक शताब्दियों के बाद की गयी। उदाहरण के लिए श्रृंगेरीमठ की स्थापना 14वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य के काल में की गयी थी।

मध्यकाल में प्रयाग

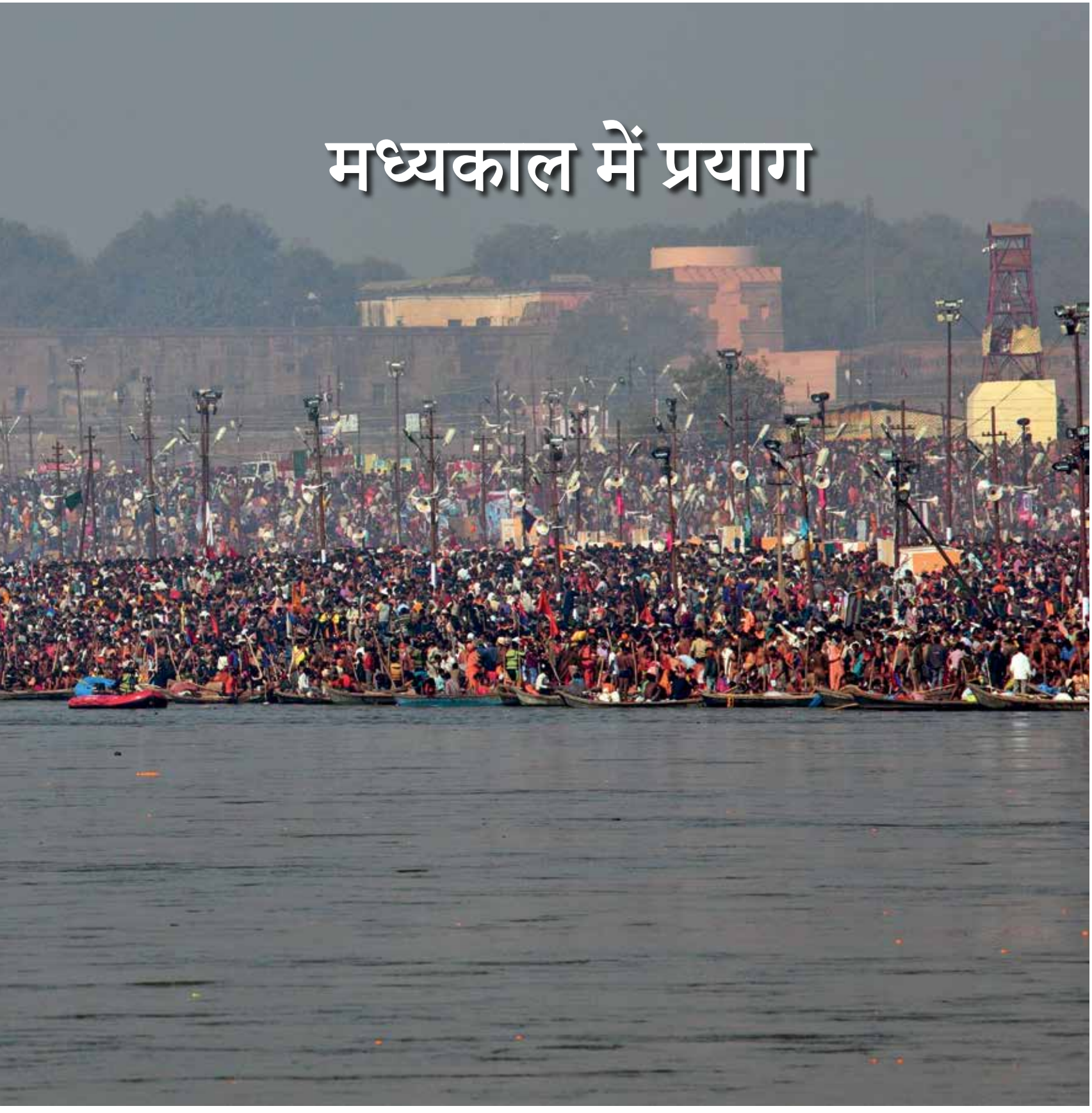

इलाहाबाद किला स्थित चालीस स्तंभों वाला हॉल

मध्यकाल में भी संगम और उसमें स्नान का महत्व कम नहीं हुआ। परन्तु इस्लामी आक्रमणों और लूटपाट और अत्याचारों से देश की जनता त्राहि-त्राहि कर उठी, इसका प्रभाव देश की तत्कालीन स्थिति पर गहराई तक पड़ा तथा देश की राजनैतिक के साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दशा भी प्रभावित हुई।

अलबरूनी ने भारत की मध्यकालीन स्थिति का वर्णन किया है। अलबरूनी ने भारत पर अरबी भाषा में 20 पुस्तकें लिखीं हैं, पर उनमें से सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक ''किताब-उल-हिन्द'' में भारतीय संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था का वर्णन किया है। ''अलबरूनी का भारत'' इसका हिन्दी अनुवाद है।

अलबरूनी पहला मुसलमान विद्वान था जिसने भारतीय साहित्य और ग्रन्थों को पढ़ने के लिए संस्कृत सीखी। उसने भगवत् गीता, पुराणों आदि का अध्ययन किया था। उसने अपने भारत सम्बन्धी विवरण में उल्लेख किया है जिसमें वह यमुना नदी को ''जौन'' नाम से सम्बोधित करता है। वह लिखता है कि कन्नौज से चल कर जौन (यमुना) और गंगा नामक दो नदियों के बीचोंबीच दक्षिण की ओर जाने वाला मनुष्य चार प्रसिद्ध नगरों से गुजरेगा - जज्जमौ, अभापुरी, बर्हमाशिल और प्रयाग।

प्रयाग का वृक्ष अर्थात् वह स्थान जहां गंगा और जौन नदियों का संगम है, जिनका वर्णन धार्मिक सम्प्रदाय की पुस्तकों में है जहां पर हिन्दू उन विविध प्रकार की यातनाओं से अपने आपको व्यथित करते हैं जिनका वर्णन धार्मिक सम्प्रदाय की पुस्तकों में है। इस वृक्ष का वर्णन करते हुए अलबरूनी कहता है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों में यह आत्महत्या की प्रथा बहुतायत थी, वे इस वृक्ष पर चढ़कर अपने आप को गंगा नदी में गिरा देते थे। एक विशेष नियम के अन्तर्गत अपने को जलाना ब्राह्मण और क्षत्रियों को निषिद्ध था, इसलिए ऐसा वो तब करते थे जब ग्रहणकाल हो। कभी-कभी गंगा में स्वयं को डुबाने के लिए वो किसी व्यक्ति को नियुक्त करते थे, जो मृत्यु हो जाने तक उन्हें गंगा में डुबाये रखता था। प्रयाग से उस स्थान का अन्तर जहां गंगा समुद्र में गिरती है, बारह फर्सख हैं। देश के दूसरे प्रान्त, प्रयाग के वृक्ष से दक्षिणतः समुद्र तट की ओर फैले हुए हैं। अलबरूनी ने पुराणों में वर्णित कद्रु और विनता की कथा का भी वर्णन किया है।

इब्नबतूता 1325 से 1354 के बीच भारत आया। इब्नबतूता ने मोहम्मद तुगलक के विषय में बताया कि जब सुल्तान दौलताबाद में था तब सुल्तान के पीने का पानी कंक नदी (गंगा) से मंगाया जाता था। वह यह भी बताता है कि भारत के लोग तीर्थयात्रा पर जाकर अपने आपको डुबा देते हैं और वहीं पर मृत व्यक्तियों की राख भी डालते हैं। वह यह भी कहता है कि गंगा स्वर्ग की नदी है।

चैतन्य महाप्रभु, जो गौड़ीय वैष्णववाद के संस्थापक थे, कृष्णभक्त थे और 'हरे कृष्ण' मंत्र को लोकप्रिय किया, प्रयाग में अपने शिष्य रूपगोस्वामी को धर्म सिखाया था। यह भी माना जाता है कि चैतन्य महाप्रभु सन् 1514 ई. में हुए कुम्भ मेले में उपस्थित थे।

बाबर ने अपने चार वर्षीय समयावधि में प्रयाग को देखा था। वह अपनी आत्मकथा 'बाबरनामा' में प्रयाग को 'प्याग', तथा यमुना को 'जौन' नाम से सम्बोधित करता है।

अकबर के काल में प्रयाग का महत्व बढ़ा। अकबरकालीन इतिहासकार बदायूंनी ने मुन्तखब-उत-तवारीख में बताया है कि 1575 में अकबर ने प्रयाग की यात्रा की और उन्होंने गंगा और यमुना के संगमस्थल पर एक किला बनवाया तथा शाही नगर की नींव डाली और उसका नाम 'इलाहाबास' रखा।

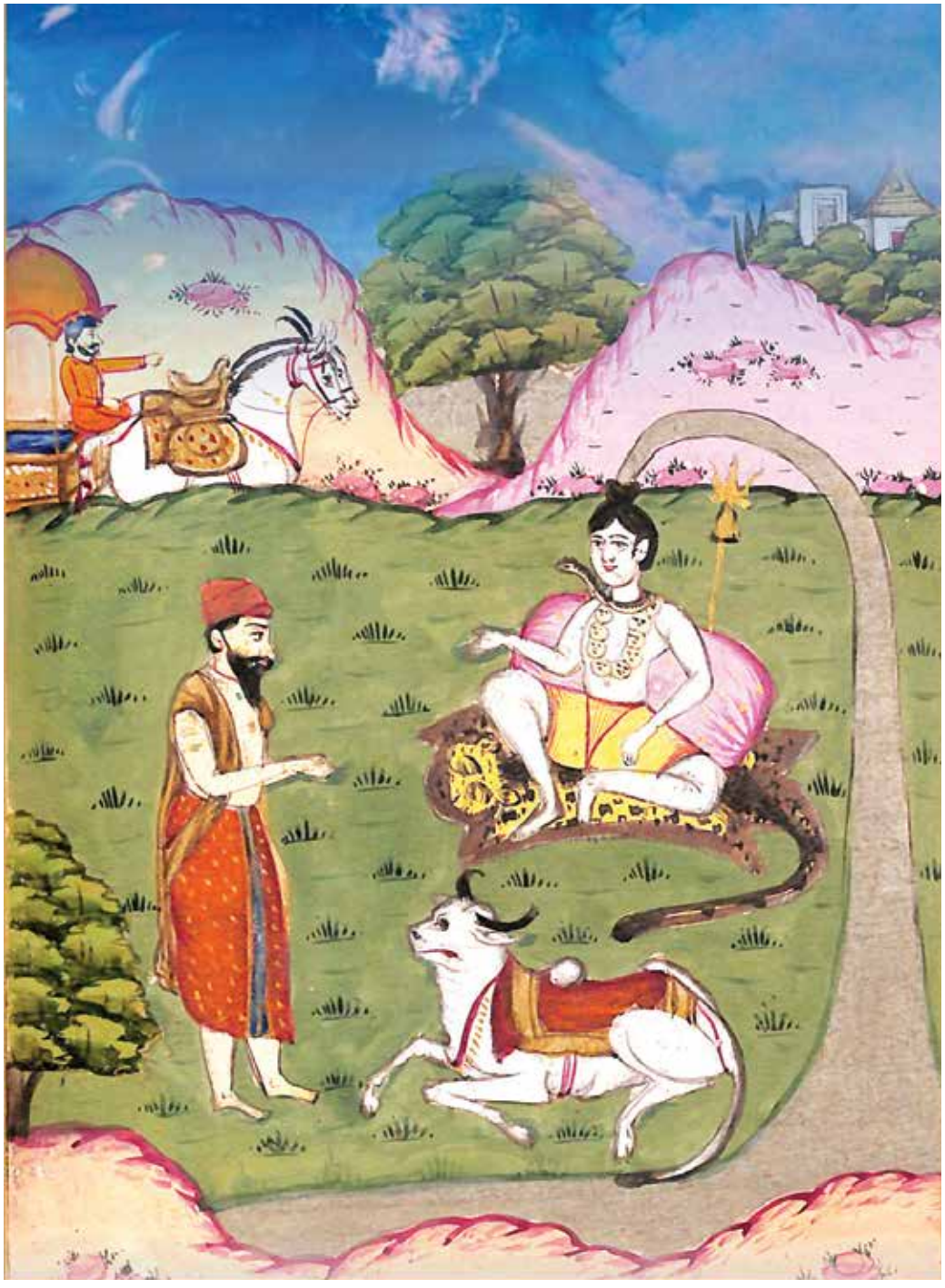

प्रदर्शित चित्र अबुल फज़ल द्वारा फारसी में लिखित 'महाभारत' नामक पाण्डुलिपि से लिया गया है। इस चित्र में दर्शाया गया है कि कैसे कैलाश पर्वत से शिव की जटा से गंगा जी पृथ्वी पर आयीं। चित्र में नन्दी शिव के सम्मुख बैठे हुए हैं तथा भागीरथ जी खड़े हुए हैं।

उसने लिखा है ''इसे लोग पवित्र स्थान मानते हैं, और अपने धर्ममत में, जिसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता पुनर्जन्म है, बताये गये पुण्यों की प्राप्ति की इच्छा से सभी प्रकार के कष्ट सहने के लिए तैयार रहते हैं... एक ऊँचे वृक्ष की चोटी से नदी के गहरे पानी में कूदकर प्राण दे देते हैं।''

अकबर का इतिहासकार अबुल फजल लिखता है कि बहुत दिनों से बादशाह की यह मनोकामना थी कि गंगा और यमुना के संगमस्थल पर जिसमें भारतवासियों की बड़ी श्रद्धा है तथा जो देश के साधु-संन्यासियों के लिए तीर्थस्थान है, पियाग (प्रयाग) नामक कस्बे में एक बड़े शहर की स्थापना की जाये तथा वहां अपनी पसन्द का एक किला बनवाया जाय।

निजामुद्दीन अहमद ने बताया कि 1584 में अकबर ने गंगा और यमुना नदियों के संगम के समीप ''झूंसी प्याक'' में एक शहर और एक किले का निर्माण कराने का आदेश दिया और शिल्पकार के रूप में हिम्मत अली को नियुक्त किया।

तीर्थराज प्रयाग और यहां पर स्नान की महत्ता बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने श्री रामचरितमानस में वर्णन किया है-

माघ मकरगत रवि जब होई। तीरथ पतिहिं आव सब कोई।।
देव-दनुज किन्नर नर श्रेनी। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी।।
पूजहिं माधव पद जल जाता। परसि अछैवट हरषहिं गाता।।
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन।।
तहां होइ मुनि रिसय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा।।

जहाँगीर ने अक्षयवट को काटने का एक प्रयास किया जो कि इलाहाबाद के किले में बहुत फैल गया था, परन्तु उसका यह प्रयास विफल हुआ। इस पर जहाँगीर ने कहा कि हिन्दुत्व कभी नहीं मरेगा, यह पेड़ इसका चिन्ह है। इस पेड़ का सम्मान तीर्थयात्री बहुत करते हैं परन्तु स्वबलिदान (आत्महत्या) देने की प्रथा आज समाप्त हो गयी है।

गंगाजल की महत्ता से प्रभावित होकर मुगल बादशाह औरंगजेब ने बीमार होने पर गंगाजल मंगवाया था।

1665 ई0 में टैवर्नियर (फ्रांसीसी यात्री) ने अपने वर्णन में लिखा है कि यह एक बड़ा शहर है जहां गंगा-यमुना का संगम होता है।

ब्रिटिश काल में कुम्भ

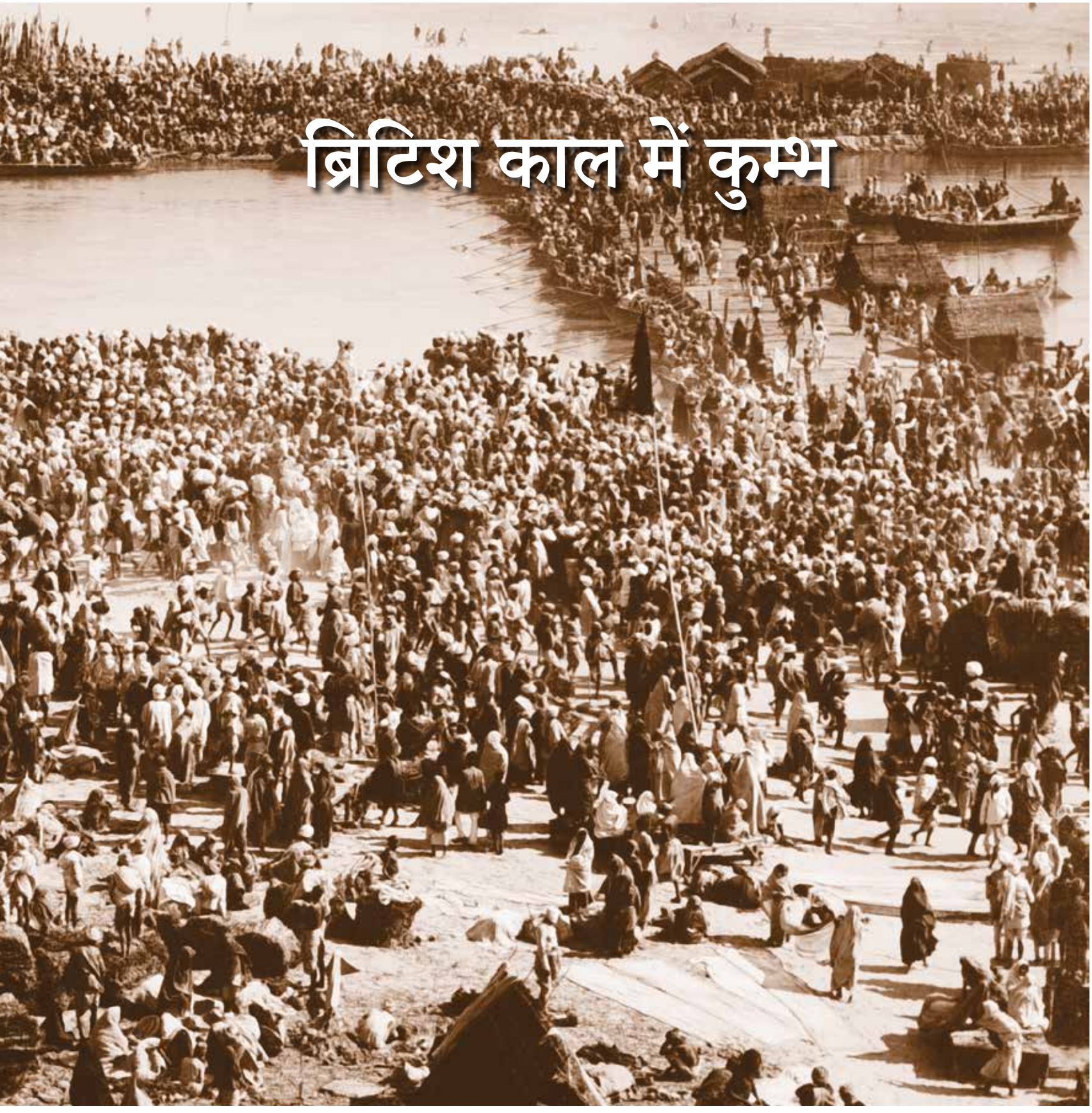

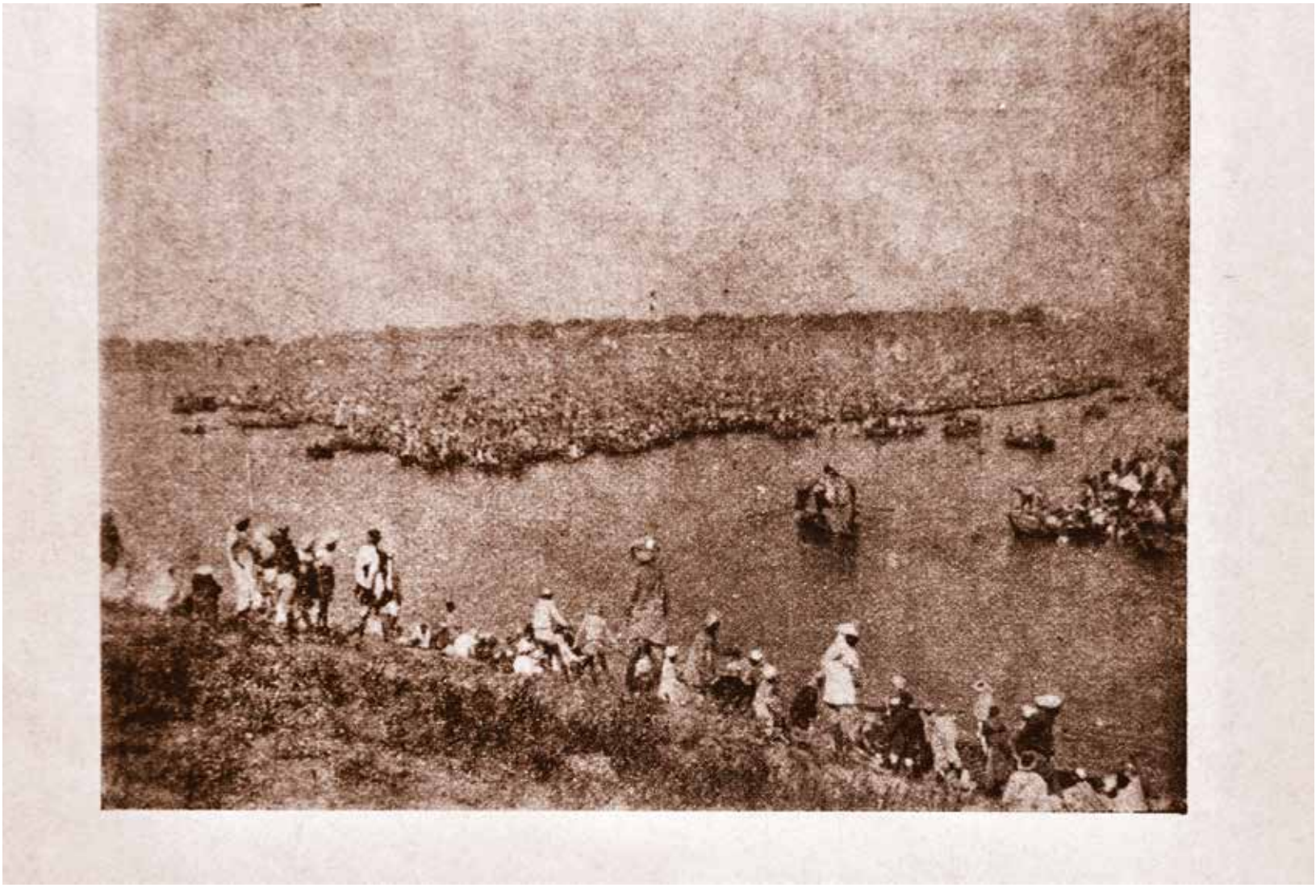

कुम्भ मेला-1906

ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि 1801 ई. में जब यह शहर अंग्रेजों के हाथ में आ गया तो उन्हें कुछ समय लगा कि मेले की व्यवस्था कैसे की जाय परन्तु कुछ समय बाद माघ मेले की सुव्यवस्था हेतु ब्रिटिश शासन की सक्रिय भूमिका और योगदान दिखायी देता है। 1810 ई. के रेग्युलेशन के अन्तर्गत अंग्रेजों ने एक तीर्थयात्रा कर लगाया जिसे बाद में हटा दिया गया। 1815 ई. के गजेटियर में वर्णित है कि माघ मेले की समिति का नाम प्रागवाल (प्रयागवाल) समिति था। 1815- ईस्ट इण्डिया गजेटियर इलाहाबाद के अनुसार माघ मेला में 1812-13

कुम्भ मेला-1906 में स्नान करती संन्यासिनें।

में आने वाले यात्रियों की संख्या 2,18,792 हो गयी।

जब ब्रिटिश शासन का प्रारम्भ हुआ तब तक गंगा पवित्र नदी के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थी। सर विलियम जोन्स, जो कि एशियाटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया के संस्थापक थे, ने गंगा की महत्ता पर एक प्रसिद्ध कविता लिखी थी जिसमें उन्होंने प्रयाग का उल्लेख एक धार्मिक शहर के रूप में किया था। इस शहर और गंगा नदी की धार्मिक छवि अब तक बन चुकी थी।

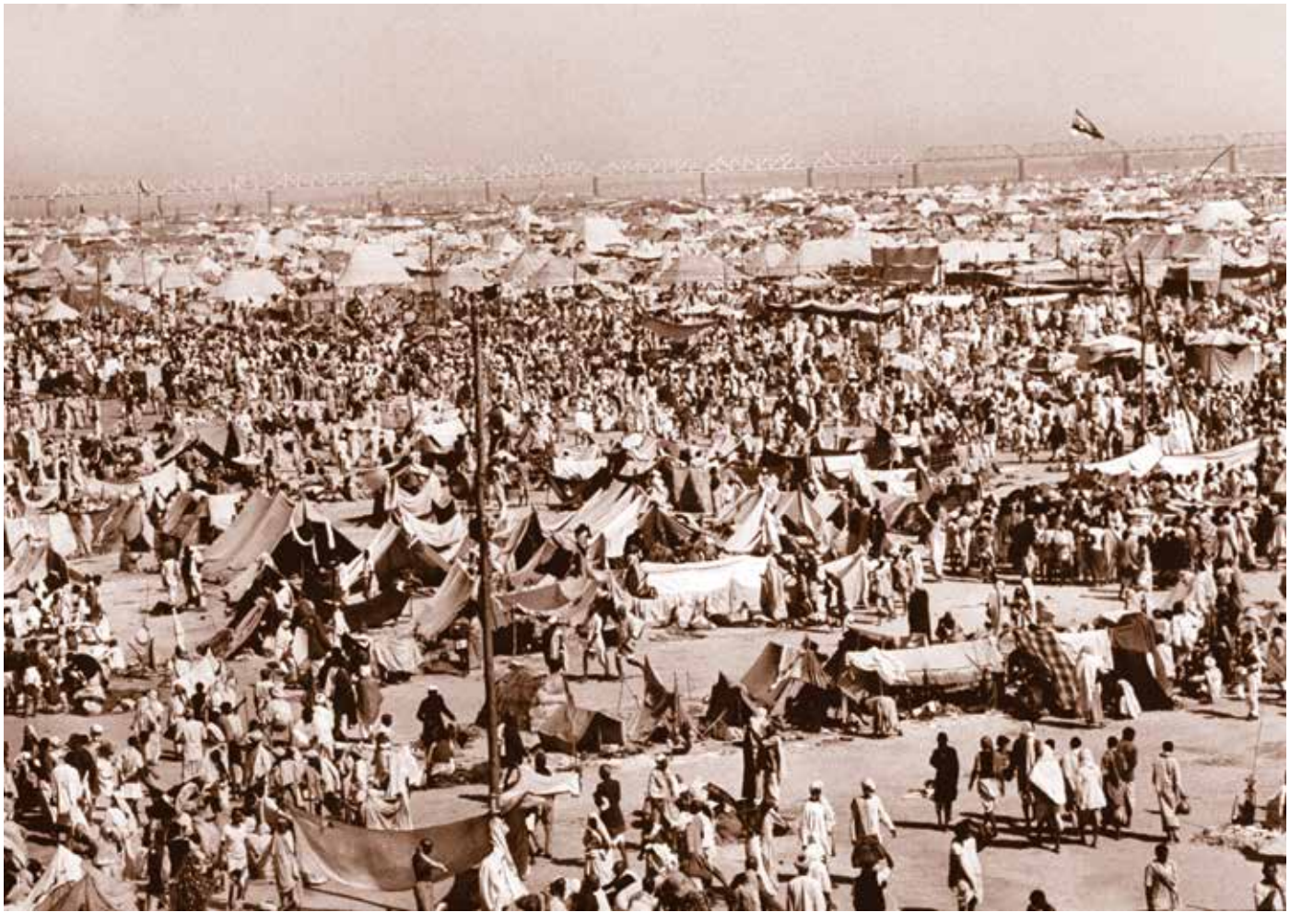

वर्ष 1953 में इलाहाबाद स्थित कुम्भ मेला के दौरान वास का दृश्य

कुम्भ का प्रारम्भ परम्पराओं पर आधारित है, प्रयाग में मेला माघ के महीने में शताब्दियों से हो रहा है परन्तु 'कुम्भ मेला' शब्द का प्रयोग 1870 ई. में पहली बार अभिलेखों में उल्लिखित हुआ। कुम्भ मेले का आँखों देखा वर्णन यूरोपीय यात्रियों और मिशनरियों के द्वारा प्राप्त होता है। सितम्बर, 1824 में जब हैबर ने अपनी यात्रा कलकत्ता से बॉम्बे की तब उन्होंने लिखा, वहाँ (प्रयाग) के निवासी इसे फकीराबाद कहते हैं।

फेनी पार्क्स, एक महिला तीर्थयात्री ने जनवरी 1833 में प्रयाग के मेले को बड़ा मेला कहा है। इस मेले में बिकने वाली वस्तुओं का भी वर्णन फेनी पार्क्स ने किया है। उन्होंने कहा कि इस मेले में सबसे विशेष फकीर, धार्मिक भिक्षुक आते हैं जिन्हें गोशाई (शिव) कहते हैं, वे वैरागी

वर्ष 1953-54 में इलाहाबाद स्थित कुम्भ मेला का एक चित्र

(वैष्णव) का जिक्र भी करती हैं। फेनी पार्क्स यह भी बताती हैं कि कोई विवाहित निःसंतान स्त्री यह प्रतिज्ञा करती है, कि जो भी पहला बच्चा जन्म लेगा वह उसे गंगा में अर्पित करेगी। यह प्रथा पूर्व में प्राग (प्रयाग) में थी परन्तु वर्तमान में नहीं है। फेनी पार्क्स माला, शंख, शिव, दुर्गा, कृष्ण का भी वर्णन करती हैं साथ ही साथ अर्ध्य की आवश्यकता भी बताती हैं।

मार्च 1843 में कैप्टन लियोपोल्ड वान ऑर्लिक ने भी प्रयाग की यात्रा की। कैप्टन लियोपोल्ड वान ऑर्लिक वर्णन करते हैं कि यमुना का पानी साफ है और गंगा का पानी पीला है परन्तु लोग सबसे ज्यादा तीर्थयात्रा हेतु प्रयागराज जाते हैं। तीर्थयात्री यहां पहुँचकर इस तरह अपना सिर मुंडाते हैं कि बाल पानी में ही गिरे, क्योंकि यह मान्यता है बालों के इस

Map. Allahabad, c. 1900, with detail of Allahabad Fort and the Sangam, showing Pragwal villages Kydganj and Daraganj. Also note the mela grounds, as indicated in the lower right-hand corner of the map (*Imperial Guide to India* 1904, 98).

बलिदान से ही वे एक लाख वर्ष स्वर्ग में व्यतीत करेंगे। उनके वर्णन के अनुसार यहां फरवरी के महीने में विशेष रूप से भक्त आते हैं। वे एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर लिंग पातालपुरी का भी उल्लेख करते हैं जिसे कि दीयों से रोशन किया गया है। शहर में 30,000 लोग हैं जो इसे फकीराबाद कहते हैं, क्योंकि यहां तीर्थयात्री और फकीर ज्यादा हैं।

गंगाजल की पवित्रता और महत्ता को भारतीय जनमानस में एक घटना के द्वारा भी समझा जा सकता है। महारानी विक्टोरिया की मृत्यु के बाद जब एडवर्ड सप्तम का राज्याभिषेक होने जा रहा था तब जयपुर के महाराजा सवाई माधव सिंह द्वितीय अपने जहाज ओलम्पिया से 1902 में लन्दन पहुँचे तो सबसे महत्वपूर्ण सामग्री के रूप में 8000

लीटर गंगाजल चांदी के कलशों में भरकर ले गये, क्योंकि उस समय समुद्र यात्रा वर्जित मानी जाती थी। यदि वह एडवर्ड सप्तम के राज्यारोहण पर न जाते तो यह शिष्टाचार विरुद्ध होता। परन्तु धार्मिक सलाहकारों की बात मानकर चांदी के सिक्के ढालकर बड़े-बड़े कलश बनाये गये और उनमें हजारों लीटर गंगा का पानी भरा गया जिनके साथ महाराजा माधव सिंह लन्दन गये।

सर सिडनी लो ने 1906 ई. में प्रयाग की यात्रा की (प्रिन्स ऑफ वेल्स के भारत आगमन के समय) और विवरण दिया कि यहां अखाड़ों के बीच प्रतिद्वन्द्विता रहती है। उन्होंने वैरागियों को सबसे ज्यादा झगड़ालू बताया।

द मॉडर्न रिव्यू - कलकत्ता एडीशन, मार्च, 1918, लेखक-अज्ञात, नोट्स, पेज नम्बर-331 - कुम्भ मेला सेवा समिति के स्वयंसेवक कहते हैं कि यह जानकर हमें अन्दरूनी खुशी मिल रही है कि पंडित हृदयनाथ कुंजरू एवं पंडित मदन मोहन मालवीय ने कुम्भ तीर्थयात्रियों की विशेष सहायता की और कठिनाइयों का सामना किया। यही है मानवता, यही है नागरिकता, यही है बन्धुत्व।

कुम्भ-1930 - मॉडर्न रिव्यू (1930)

यह कुम्भ मेला विज्ञान की एक विजय है एवं कारपोरेट कार्य की सर्वोच्चता का प्रतीक है। इस मेले में 1 मिलियन लोग थे जो किले के पश्चिम में एकत्र हुए। एक दिन में रेलवे ने 100 हजार तीर्थयात्रियों को लाने, ले जाने का काम किया और कोई दुर्घटना नहीं हुई। न ही कोई महामारी और हिंसा की घटना हुई। 5000 साधु भी थे जिनके पास औजार और धार्मिक शस्त्र थे, शान्ति से रहे। सफाई व्यवस्था बहुत अच्छी थी और हैजा (कालरा) से सुरक्षित रखने के सेवा समिति के युवकों के प्रयास सराहनीय थे।

1938 ई. में ब्रिटिश सरकार ने युनाइटेड प्रॉविन्स मेला अधिनियम पारित किया, यह वार्षिक माघ मेले कि सुव्यवस्था हेतु पारित किया गया था। इसके अन्तर्गत प्रयाग के जिलाधिकारी के अधिकार बढ़ा दिये गये कि वो मेले की सुव्यवस्था हेतु समिति गठित कर सकते थे। इस कारण मेले में तीर्थयात्रियों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई।

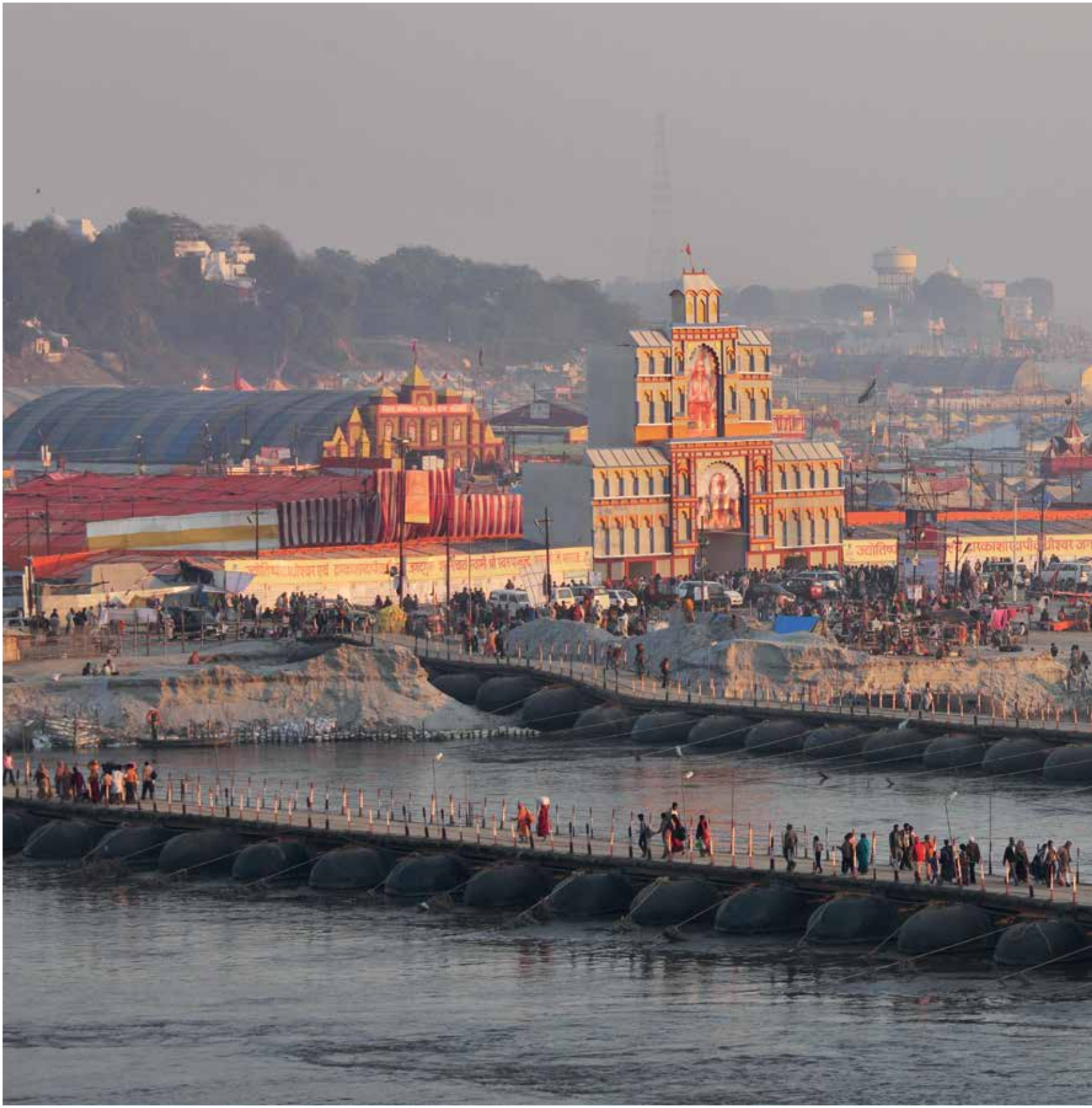

कुम्भ पर्व की वैज्ञानिक एवं ज्योतिषीय महत्ता

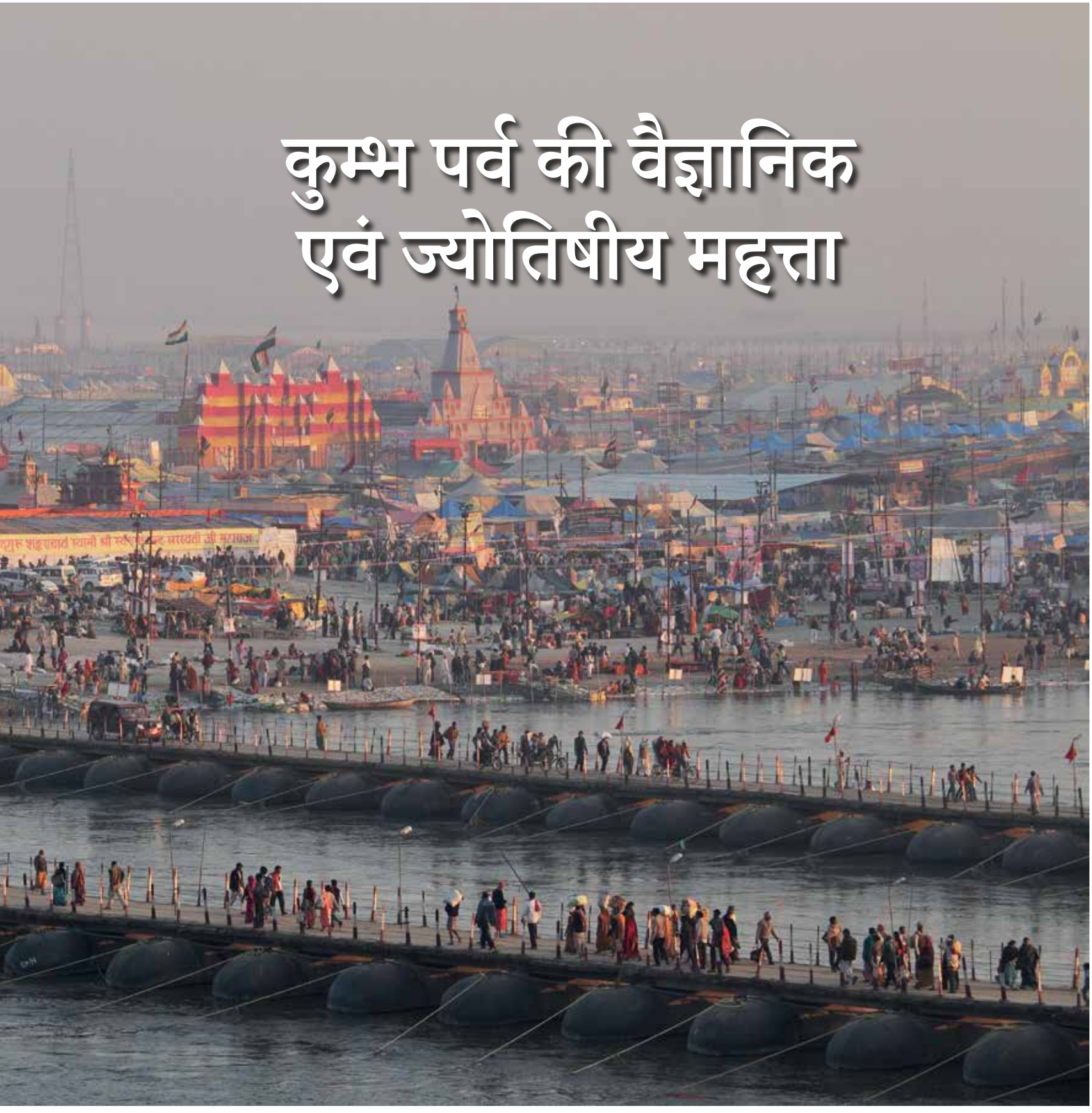

कुम्भ स्नान की महत्ता तीर्थयात्रा से प्रेरित है। 'तीर्थ' शब्द से आशय है जो व्यक्ति को भवसागर पार करने की प्रेरणा दे जिससे व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सके। तीर्थयात्रा सामान्य व्यक्ति के पहुँच में होती है, जिसके लिए श्रद्धा, सच्चा विश्वास और भक्ति की आवश्यकता होती है जो कि सबकी पहुँच में है। ज्यादा से ज्यादा लोगों का हित ही इसका उद्देश्य है। तीर्थराज प्रयाग त्रिवेणी संगम पर, जहाँ तीन पवित्र नदियों का संगम होता है, में स्नान करने पर तीर्थयात्रियों को सबसे ज्यादा पुण्य प्राप्त होता है।

कुम्भ पर्व की अपनी अलग वैज्ञानिक पृष्ठभूमि और ज्योतिषीय महत्ता है। हिन्दू लोग चन्द्र पंचांग को मानते हैं। यह चन्द्रमा से प्रभावित होता है अथवा चन्द्र के बढ़ने और घटने पर आधारित होता है। चन्द्र पंचांग के अनुसार एक माह दो भागों में विभाजित होता है- शुक्ल और कृष्ण पक्ष।

12 चन्द्रमास हैं चैत्र (मार्च-अप्रैल), वैशाख (अप्रैल-मई), ज्येष्ठ (मई-जून), आषाढ़ (जून-जुलाई), श्रावण (जुलाई-अगस्त), भाद्र (अगस्त-सितम्बर), आश्विन (सितम्बर-अक्टूबर), कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर), मार्गशीर्ष (नवम्बर-दिसम्बर), पौष (दिसम्बर-जनवरी), माघ (जनवरी-फरवरी), फाल्गुन (फरवरी-मार्च)।

हिन्दू पंचांग 6 ऋतुओं की सूची देता है- बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर।

जब सूर्य एक विशेष राशि में प्रवेश करता है तो उस तिथि से एक सौर माह का प्रारम्भ होता है, 12 सौर माह होते हैं। एक चन्द्रमास में 30 तिथियाँ होती हैं। प्रथम तिथि पूर्णिमा को और तीसवीं अमावस्या को माना जाता है। शुक्ल पक्ष के 15वें दिन पूर्णिमा होती है और 16वीं तिथि को कृष्ण पक्ष की प्रथम तिथि होती है। कृष्ण पक्ष की 15वीं तिथि अमावस्या होती है। 30 चन्द्रमास दिन 27 या 29 सूर्यमास के दिन के बराबर है। तिथियाँ हैं-प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा अथवा अमावस्या। इन तिथियों का विशेष धार्मिक महत्व है।

वेद (वेदांग) की एक शाखा के रूप में ज्योतिष विज्ञान का आविर्भाव हुआ जिसकी सहायता से भविष्यवाणी करना सम्भव होता है और अतीत की घटनाओं के विषय में जाना जा सकता है। व्यक्ति के जन्म के समय गृहों की स्थिति को जानकर भविष्य का वर्णन किया जाता है।

ज्योतिष के तीन भाग हैं-

1. सिद्धान्त - जो कि विज्ञान का ज्योतिषीय पक्ष देखता है।
2. संहिता - जो वैश्विक घटनाओं के बारे में बताता है।
3. होरा - जो मनुष्य की जन्म-कुण्डली का वर्णन करता है।

यह विश्वास किया जाता है कि जिनकी आध्यात्मिक शक्तियां ब्रह्मा के साथ थी और जिन्हें ब्रह्मा के द्वारा विज्ञान सिखाया गया वह व्यक्ति हैं-वाराह मिहिर, कालीदास, वशिष्ठ, व्यास, कश्यप, वेंकटेश, आर्यभट्ट, भाष्कराचार्य। नौ ग्रह हैं जो पृथ्वी को प्रभावित करते हैं- सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, ब्रहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु। राहु और केतु छायाग्रह कहलाते हैं।

राशि चक्र 360 अंश का होता है, इसे भाचक्र भी कहते हैं। इसको 12 भागों में विभाजित

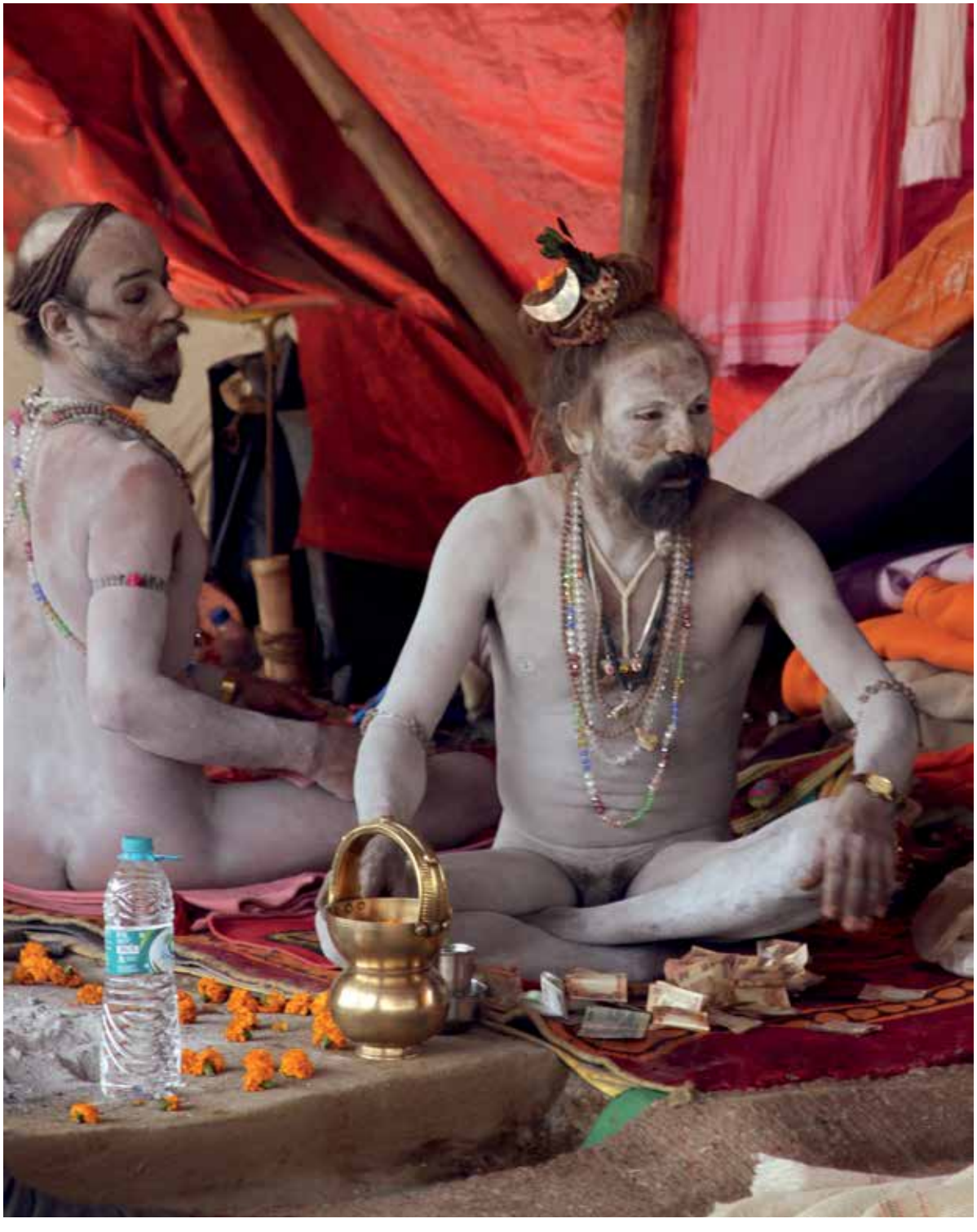

किया जाता है-मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन। एक भाग को एक चिन्ह या राशि कहा जाता है। यह 24 घण्टे में पूर्व से पश्चिम, अपनी धुरी पर एक बार घूमता है। इनके बारह चिन्ह होते हैं।

नक्षत्र का अर्थ सितारों से है, 27 नक्षत्र हैं।

कुम्भ मेले के आयोजन का सम्बन्ध कैलेण्डर की तिथियों से नहीं, बल्कि आकाशीय ग्रहों की चाल और उनसे उत्पन्न ज्योतिषीय संयोग से होता है अर्थात् ज्योतिषीय गणना के अनुसार नक्षत्रों एवं ग्रहों का एक निश्चित योग बनने पर ही कुम्भ पर्व मनाया जाता है। कुम्भ का हर मेला एक-दूसरे से तीन वर्ष के अन्तर पर बारी-बारी से चार स्थानों पर होता है (प्रयाग, हरिद्वार, नासिक, उज्जैन)। प्रत्येक स्थान पर 12 वर्ष के उपरान्त कुम्भ मेले की बारी आती है।

मकरेचदिवनाथे ह्यजगे च बृहस्पतेः।
कुंभयोगोभवेतत्र प्रयागेह्याति दुर्लभः।
मेषराशिगतेजीवे मकरं चन्द्रभास्करौ।
अमावस्या तथा योगः कुम्भाख्यस्तीर्थ नायके।

(रेखातन्त्रे)

माघेमेषगते जावे-मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमावस्यातदायोगः कुम्भाख्यास्तीर्थ नायके।

(विष्णुयोग)

प्राचीन काल से प्रयाग में तीर्थयात्रियों के स्नान के लिए कोई महीना व तिथि निर्धारित नहीं की गयी है। संगम में माघ में स्नान करने सम्बन्धी विचार या विश्वास ज्योतिष (एस्ट्रोलॉजी) के ज्ञान के बाद विकसित हुआ। प्राचीन काल में उत्तरायण इस हेतु बहुत उपयुक्त समय माना जाता था। उत्तरायण का अर्थ है उत्तर की ओर जाना। यह समय जाड़े और गर्मी का

संक्रमण काल होता है (अयनान्त), इसी को उत्तरायण कहते हैं। यूरोपीय खगोल वैज्ञानिकों के अनुसार शीतकालीन अयनान्त 21 दिसम्बर को पड़ता है और ग्रीष्म अयनान्त 21 जून को पड़ता है, लेकिन भारतीय खगोल वैज्ञानिक इसे 14 जनवरी और ग्रीष्मकालीन को 14 जुलाई मानते हैं।

भारतीय खगोल वैज्ञानिकों के अनुसार उत्तरायण तब प्रारम्भ होता है जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश कर जाता है और समाप्त तब होता है जब सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करता है।

इस समय सूर्य लगातार उत्तर की ओर बढ़ता है और सबसे उत्तर के बिन्दु पर ग्रीष्म अयनान्त के दिन सूर्य पहुँचता है, फिर दक्षिण की ओर चलने लगता है। एक माह प्रत्येक राशि में सूर्य रूकता है, प्रथम छः माह उत्तरायण होते हैं जिनमें सूर्य मकर राशि में रहता है। यह समय धार्मिक अनुष्ठानों के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है।

मकर राशि में सूर्य के प्रवेश करने के एक माह के अन्तर्गत, जो कि प्रायः 14 जनवरी को पड़ता है और तब तक जारी रहता है, जब तक सूर्य कुम्भ राशि में प्रवेश नहीं कर जाता है। यह समय संगम पर स्नान के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है। माघ माह के अधिकांश दिन इसी समयावधि के समय पड़ते हैं, इसलिए इसे माघ स्नान कहा जाता है, शुद्ध रूप में इसे मकर स्नान कहते हैं। जो लोग बहुत धर्मपरायण हैं, वे मकर संक्रान्ति से कुम्भ संक्रान्ति के समय को जिसमें जो भी हिस्सा माघ माह का पड़ता है स्नान के लिए बहुत उपयुक्त समय मानते हैं।

यह कहा जा सकता है कि सूर्य मकर राशि में प्रवेश कर उत्तरायण में रहता है तो वह अपनी चमक और ताकत को जाड़े में खो देता है, फिर से प्राप्त करता है। इस प्रकार मकर संक्रान्ति जाड़े के अन्त का सूचक है और बसंत का प्रारम्भ है। यह अवसर पूरे विश्व में आनन्दोत्सव के रूप में मनाया जाता रहा है।

संभवतः इन परिस्थितियों ने महात्माओं को प्रभावित किया हो जिससे प्रयाग में मकर संक्रान्ति के दिन स्नान का पर्व प्रारम्भ किया गया। यह अवश्य याद रखना चाहिए कि हमारे देश में प्रत्येक उत्सव धार्मिक समारोह के रूप में प्रारम्भ होता है। कुछ स्थानों पर यह धार्मिक समारोह तथा कुछ स्थानों पर स्नान के रूप में प्रारम्भ होते हैं। ज्योतिष विज्ञान के विकास के परिणामस्वरूप अमावस्या के दिन संगम में स्नान महत्वपूर्ण माना जाता है, यदि इसे संक्षिप्त रूप में रखें तो सूर्य आत्मा का स्वामी है और चन्द्र मस्तिष्क का स्वामी है। इसलिए ऐसी मान्यता है कि सूर्य और चन्द्र जिस दिन बराबर अंश पर मकर राशि में हों, वह दिन संगम पर स्नान के लिए सबसे महत्वपूर्ण है, उस दिन अमावस्या होती है।

इस समय सूर्य मकर राशि में होता है। जब सूर्य और चन्द्र प्रत्येक राशि में बराबर अंश पर मिलते हैं तब अमावस्या पड़ती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि सूर्य प्रत्येक राशि में एक माह रहता है। इस प्रकार 12 राशियाँ हैं जो एक के बाद एक आती हैं। चन्द्रमा प्रत्येक राशि में ढाई दिन रहता है, इस प्रकार 12 राशियों में जाता है तथा 27 दिन में समस्त 12 राशियों में चक्र पूरा करता है।

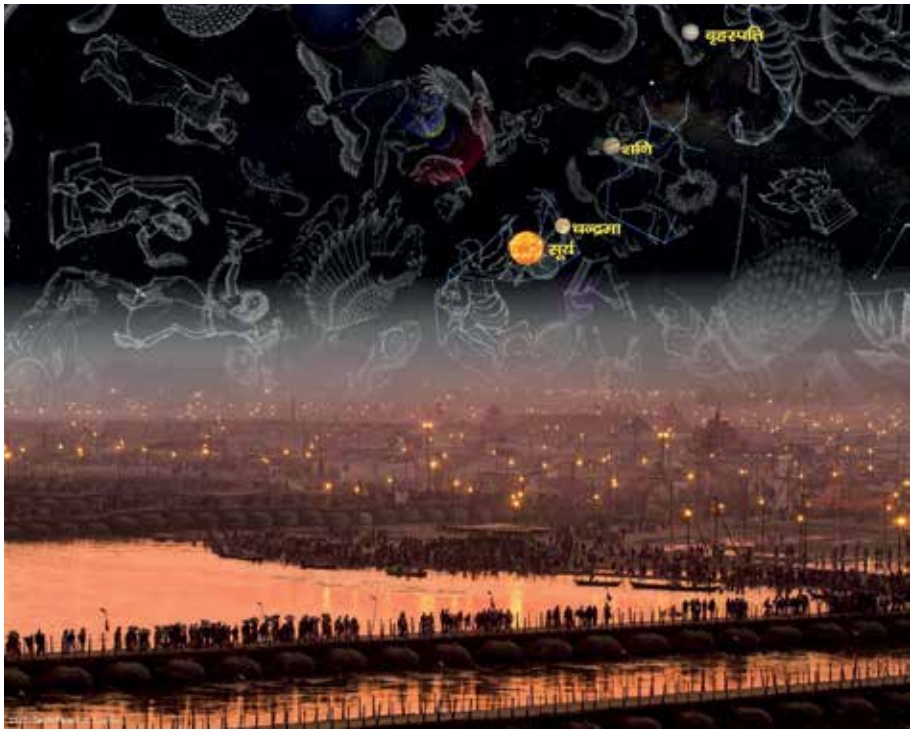

परिणामस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा का संयोजन मकर राशि में एक समान डिग्री पर केवल अमावस्या को होता है जो मास में एक बार पड़ता है जो कि प्रयाग में संगम पर स्नान के लिए उपयुक्त माना जाता है। बृहस्पति, जो कि बुद्धिमत्ता का स्वामी है, जब सूर्य और चन्द्रमा के साथ उसकी युति होती है, तब कुम्भ स्नान का समय आता है। ऐसी धारणा है कि आत्मा, मस्तिष्क एवं विचार तीनों एक निश्चित सम्बन्धों में आते हैं और एक माह तक यह समय रहता है तब संगम, जो प्रयाग में है, में स्नान अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। इन तीनों ग्रहों के संयोजन की यह घटना प्रायः 12 वर्ष पर होती है। कभी-कभी 11 और 13 वर्षों पर भी होती है। लम्बे समय से कुम्भ 12 वर्षों के अन्तराल पर ही आता है। प्रत्येक 12वें वर्ष में जब बृहस्पति कुम्भ राशि में तथा सूर्य मेष राशि में होता है, तब कुम्भ स्नान पर्व का आयोजन हरिद्वार या गंगाद्वार में होता है। गंगाद्वार नाम प्राचीन प्रतीत होता है, क्योंकि यहीं सर्वप्रथम गंगा मैदानों में उतरी हैं और यहाँ से हिमालय, जो हरि का देश कहलाता है - प्रारम्भ होता है। इसी से इसका नाम हरिद्वार प्रसिद्ध हुआ। उपर्युक्त वर्णित ग्रह योग का समय हरिद्वार में गंगा में नहाने के लिए उपयुक्त है। यह प्रदर्शित करता है कि कुम्भ हरिद्वार में आयोजित होता है और इसका नामकरण

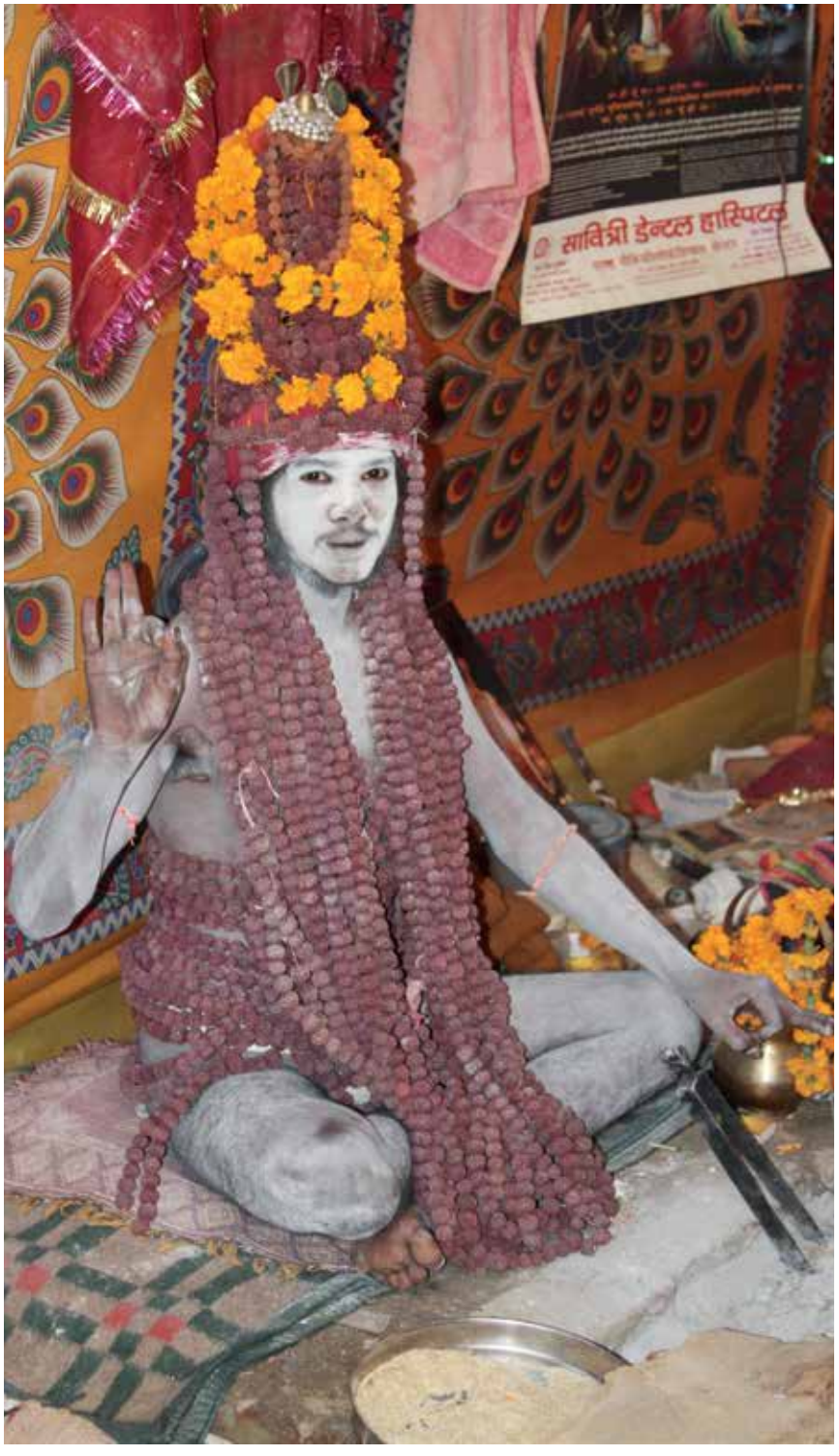

कुम्भ राशि में होने के कारण पड़ा। यह उत्सव बृहस्पति के कुम्भ में प्रवेश करने के कारण मनाया जाता है।

नासिक का क्षेत्र गोदावरी के तट पर स्थित है। गोदावरी से आधा मील पंचवटी है। यहाँ पर एक गुफा सीता गुफा के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पंचवटी वृक्ष थे जिससे इस स्थान का नाम पंचवटी पड़ा। वाल्मीकि ने पंचवटी की महिमा का बहुत कुछ बखान किया है। यहाँ से डेढ़ मील पर तपोवन, वहीं दण्डकारण्य है और वहाँ से 20 मील के अन्तर पर त्रयम्बकेश्वर का स्थान है जिसकी गणना द्वादश ज्योर्तिलिंगों में है। यहीं से गोदावरी निकलती है। जब सूर्य एवं बृहस्पति सिंह राशि में प्रवेश करते हैं, तब नासिक त्रयमबकेश्वर में कुम्भ मेले का आयोजन गोदावरी के तट पर किया जाता है।

उज्जैन अति प्राचीन नगर है, इसका प्राचीन नाम अवन्तिकापुरी है। यह महाकालेश्वर का क्षेत्र है। कहते हैं कि कभी महाकालेश्वर के शिखर 40 कोस से दिखाई पड़ते थे। संस्कृत ग्रन्थों में उज्जैन की बड़ी महिमा वर्णित है। कालिदास ने मेघदूत में लिखा है -

स्वल्पीभूते सुचरित फले स्वर्गिणां गां गतानाम्।
शेषैः पुण्येर्हृतमिवदिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्।।

यह नगर क्षिप्रा नदी के तट पर है। विक्रमादित्य ने शकों को पराजित कर नर्वदा से पंजाब की उत्तरी सीमा तक राज्य विस्तार कर अपना सम्वत् चलाया और उज्जैन के वैभव को चोटी पर पहुँचा दिया। हर 12वें वर्ष जब बृहस्पति सिंह राशि में और सूर्य मेष राशि में आते हैं, तब उज्जैन में कुम्भ का मेला लगता है।

कुम्भ की परम्पराएँ

कुम्भ की परम्परा एक प्राचीन परम्परा है जिसमें बहुत सी मान्यतायें और धार्मिक परम्पराएँ सम्मिलित हैं। बोनाजॉली (Bonazzoli) के अनुसार सर्वप्रथम दो परम्पराओं का उल्लेख करना उचित होगा। प्रथम-महाकाव्य-पुराण परम्परा (Epic-Puranic Tradition), द्वितीय-ज्योतिषीय परम्परा (Astrological Tradition)। महाकाव्य और पौराणिक कथाओं की मान्यताओं के अनुसार समुद्र मंथन के पश्चात निकले अमृत कलश को लेकर भाग-दौड़ में बारह स्थानों पर अमृत की बूंदें छलकने का वृत्तान्त मिलता है, जिनमें चार स्थान इस मृत्युलोक में, चार स्थान आकाशलोक में, शेष चार स्थान पाताललोक में हैं। पृथ्वी के चार वे स्थान जहाँ पर अमृत की बूँदें अमृत कलश से बाहर गिरीं वहाँ कुम्भ पर्व मनाया जाता है, गंगा नदी के तट पर हरिद्वार, त्रिवेणी (गंगा, यमुना व सरस्वती) तट पर प्रयाग, क्षिप्रा नदी के तट पर उज्जैन और गोदावरी नदी के तट पर नासिक हैं।

कुम्भ मेला पर प्रयागराज में गंगातट पर गांजा कश लेता एक साधु

ज्योतिषीय गणना के अनुसार नक्षत्रों व ग्रहों का एक निश्चित योग बनने पर ही कुम्भ पर्व का प्रारम्भ होता है। प्रत्येक 12वें वर्ष में जब बृहस्पति कुम्भ राशि में तथा सूर्य मेष राशि में होता है, तब कुम्भ स्नान पर्व का आयोजन हरिद्वार या गंगाद्वार में होता है। यह उत्सव बृहस्पति के कुम्भ में प्रवेश करने के कारण मनाया जाता है।

नासिक का क्षेत्र गोदावरी के तट पर स्थित है। जब सूर्य एवं बृहस्पति सिंह राशि में प्रवेश करते हैं, तब नासिक त्रयम्बकेश्वर में कुम्भ मेले का आयोजन गोदावरी के तट पर किया जाता है।

कुम्भ मेला पर पावन स्नान को उमड़ी भीड़

उज्जैन अति प्राचीन नगर है। इसका प्राचीन नाम अवन्तिकापुरी है। हर 12वें वर्ष जब बृहस्पति सिंह राशि में और सूर्य मेष राशि में आते हैं, तब उज्जैन में कुम्भ का मेला लगता है।

प्रयाग कुम्भ को नागा संत सर्वोपरि मानते हैं तथा इसे राज-राजेश्वरी कहते हैं, जबकि विद्वान एवं ज्योतिष परम्परा के आधार पर हरिद्वार से ही कुम्भ पर्व का आरम्भ होने का क्रम माना जाता है।

गोदावरी नदी के तट पर नासिक स्थित है जो गंगा जैसी ही मानी जाती है। इसे दक्षिण की गंगा भी कहा जाता है। गौतम ऋषि गंगा नदी को गोदावरी के रूप में पृथ्वी पर लाये विराम लगाएं ब्रह्म पुराण में उल्लेख मिलता है कि विन्ध्य पहाड़ियों के दक्षिण में गंगा को गौतमी कहा जाता था और उत्तर में इसे भागीरथी। गोदावरी नासिक में रामघाट पर एक मन्दिर है। इसे प्रत्येक 12 वर्षों के पश्चात जब बृहस्पति सिंह राशि में प्रवेश करता है, तब खोला जाता है। ऐसा माना जाता है कि गंगा का जल इस मन्दिर पर लाया जाता है।

इसी प्रकार की कथा उज्जैनी, जो क्षिप्रा के किनारे है, में मिलती है। काशी में गंगा उत्तर की तरफ बहती है। स्कन्द पुराण में क्षिप्रा को पूर्व वाहिनी कहा गया है। इसीलिए कुम्भ पर्व गंगा नदी से मुख्य रूप से जुड़ा त्यौहार प्रतीत होता है।

उपर्युक्त चारों पुण्यतीर्थों में कुम्भ पर्व की घटना कारक ग्रह - बृहस्पति का समीक्षण करने से एक बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट है कि गुरु (बृहस्पति) कुम्भ पर्व का कारक ग्रह है। गुरु (बृहस्पति) को एक राशि से अगली राशि पर जाने में प्रायः 13 मास का समय लगता है। प्रत्येक ग्रह स्तम्भी, वक्री एवं मार्गी होकर अपने नियमित समय से कम या अधिक समय तक एक राशि में रह जाते हैं।

इस प्रकार ग्रहों की गति में आंशिक परिवर्तन होता रहता है। बृहस्पति ग्रह को पुनः उसी राशि में आने में प्रायः 12 वर्ष का समय लग जाता है। अतः कुम्भ पर्व 12 वर्ष के अन्तर पर घटित होते हैं।

कुम्भ की अन्य परम्पराएँ

(i) तीर्थयात्रा - पुराणों में वर्णित प्रयाग माहात्म्य के अनुसार जो भी यात्री प्रयाग की तीर्थयात्रा करता है उसे वहाँ मुण्डन कराना चाहिए, फिर व्रत, और फिर प्रथम दिन घी से श्राद्ध करना चाहिए। तीर्थयात्री को प्रतिदिन स्नान करना चाहिए और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। तीर्थयात्री को नंगे पैर यात्रा करनी चाहिए, उसके सिर पर पगड़ी नहीं होनी चाहिए और शरीर पर ऊपर का वस्त्र नहीं पहनना चाहिए। तीर्थयात्री को किसी भी प्रकार के वाहन का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे तीर्थयात्रा के आधे गुण नष्ट हो जाते हैं, यदि ऐसा नहीं कर सकते हैं तो केवल हरि का स्मरण पूरे समर्पण से करना चाहिए। तीर्थयात्रा का फल प्राप्त करने के लिए यहीं एक माध्यम है।

(ii) तिथि और मुहूर्त - शताध्यायी के अनुसार तीर्थयात्रा की तिथि पंचांग और शास्त्र के अन्तर्गत निकाली जाती है। प्रथम दिन में सिर्फ एक बार भोजन करना चाहिए, दूसरे दिन वह खाद्य पदार्थ खाना चाहिए जिसका आहुति (Sacrificial Food) दी गयी हो। तीसरे दिन व्रत रखना चाहिए और मुण्डन कराना चाहिए। चौथे दिन स्नान के बाद गणेश पूजा करनी चाहिए और साथ ही अपने इष्टदेव की पूजा करनी चाहिए। जब अपनी यात्रा के भगवानों को चुन लिया तो घी से एक श्राद्ध करना चाहिए, फिर योग्य ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। एक वस्त्र-करपति (Karpati) पहनना चाहिए और संकल्प लेना चाहिए। तत्पश्चात् अपने बड़ों की आज्ञा लेकर निश्चित मुहूर्त में गाँव से बाहर जाना चाहिए। गाँव की एक परिक्रमा करने के पश्चात् तीर्थयात्री को घी और श्राद्ध में प्रयोग की गयी सामग्री को खाना चाहिए। तीर्थयात्रा का यह नियम था कि तीर्थयात्री को प्रतिदिन स्नान करना चाहिए और यदि उन्होंने कोई वर्जित वस्तु छू ली है तो उन्हें दुबारा स्नान करना पड़ेगा। यदि संकल्प लेने के पश्चात् तीर्थयात्रा रूकती है तो प्रायश्चित करना पड़ेगा, यदि रास्ते में मृत्यु हो जाती है तो उसे एक ऋषि माना जायेगा। किसी भी वाहन का, किसी भी प्रकार के दण्ड (छड़ी) का और छाते का प्रयोग नहीं

किया जा सकता है। दण्ड और छाते का प्रयोग केवल दीक्षा प्राप्त व्यक्ति (स्नातक) ही कर सकते हैं।

(iii) अक्षयवट - शताध्यायी के अनुसार त्रिवेणी या वेणी, जिसे विश्व का जघान कहा जाता है और अक्षयवट, जिसके बारे में लोग अभी भी कल्पना करते हैं और समर्पण करते हैं, पवित्र माना जाता है जो कि प्रयाग का केन्द्र है, 1584 में इसे अकबर ने कटवा दिया था। त्रिस्थली सेतु (1560 ई. में लिखा गया) में अक्षयवट से गिरकर आत्महत्या करने का वर्णन मिलता है। जो अक्षयवट से गिरेगा और वटमूल तक पहुँचेगा वह सारे स्वर्गों को पार करके रूद्रलोक जायेगा।

शताध्यायी के वट माहात्म्य में बताया गया है कि एक दिन ब्रह्मा के चार बच्चे सनक आदि बैकुण्ठ गये जहाँ विष्णु ने उनसे पूछा कि उन्होंने कौन से आश्चर्य ब्रह्माण्ड में देखे, तब उन्होंने उत्तर दिया कि उनके द्वारा एक-मात्र आश्चर्य के रूप में प्रयाग के वटवृक्ष को देखा गया - एक विशाल वृक्ष, जो 5 योजन तक फैला हुआ था और जिसमें 100 शाखायें थीं और जिसका निचला हिस्सा दिखाई नहीं देता था, उसकी जड़ें सातों पाताल तक जाती हैं। इसकी पत्तियाँ सुनहरी हैं और फल मीठे हैं। इसकी छाया गहनों के सामान है जिसका अन्त नहीं है।

प्रयागराज में गंगातट पर कुम्भ मेला के दौरान धार्मिक तर्पण करते हिन्दू भक्तगण

तीर्थ के अतिरिक्त प्रयाग में और भगवान भी हैं। महाभारत और पुराणों के अनुसार प्रयाग को एक स्वर्ग के समान समझना चाहिए जहाँ कि भगवान और उनके भक्त रहते हैं, साथ ही तीर्थराज विश्व का केन्द्र है। यह वह स्थान है जो शाश्वत रहेगा, तब भी जब विश्व की समाप्ति होगी। यहीं पर माधव रहते हैं जो सृष्टिकर्ता हैं, शिव विध्वंस के देवता हैं। इसीलिए प्रयाग शाश्वत (Eternal Point) है।

(iv) धार्मिक क्रियायें - जो तीर्थयात्री भक्तिपूर्वक तीर्थराज आते हैं, वो वहाँ पहुँचकर धार्मिक संस्कारों का कड़ाई से पालन करते हैं, क्योंकि वे पर्यटक रूप में वहाँ नहीं जाते हैं, बल्कि शुद्धिकरण हेतु और मोक्ष की प्राप्ति के उद्देश्य से प्रयाग जाते हैं। प्रयाग माहात्म्य में विस्तृत रूप से बताया गया है कि भक्त को पवित्र नगर में क्या-क्या करना होगा। यह धार्मिक क्रियायें अलग-अलग पुस्तकों में अलग-अलग वर्णित हैं। प्रयाग की तीर्थयात्रा आवश्यक है, क्योंकि बिना प्रयागराज की तीर्थयात्रा किये बिना जीवन व्यर्थ है, चाहे विद्या, धन, तपस्या भरपूर ही क्यों न हो, वहाँ पर जाना और रहना बहुत ही गुण सम्पन्न है, हमारी पुस्तकों में लिखा है कि कम से कम एक रात अथवा तीन रातें रहना आवश्यक हैं।

कल्पवास - प्रयाग में कल्पवास की प्रशंसा की जाती है और इसे प्रोत्साहित किया जाता है। कल्पवासी को एक माह प्रयाग में रहना होता है। इसके अन्तर्गत संगम के तट पर निवास कर वेदाध्ययन और ध्यान करते हैं। जो भी गृहस्थ कल्पवास का संकल्प लेकर आता है, वह पर्णकुटी में रहता है। इस अवधि में दिन में एक बार ही भोजन किया जाता है तथा मानसिक रूप से धैर्य, अहिंसा और भक्तिपूर्वक रहता है। ऐसी मान्यता है कि जो कल्पवास की प्रतिज्ञा करता है, वह अगले जन्म में राजा के रूप में जन्म लेता है तथा जो मोक्ष की अभिलाषा लेकर कल्पवास करता है, उसे अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है।

जब तीर्थयात्री धार्मिक शहर में पहुँचते हैं तो सबसे पहले साष्टांग प्रणाम करते हैं। तीनों नदियों की महानता का बखान करते हैं। तीर्थयात्री को तीर्थ से जल लेकर अपने हाथ, पैर और चेहरे को धोना चाहिए, दो बार आचमन करना चाहिए और अर्ध्य देना चाहिए। फिर वस्त्र पहनकर स्नान करना चाहिए और संकल्प लेना चाहिए। नदी पर पहुँचकर भक्त को अपने दोनों हाथों से कुम्भ का आकार बनाना चाहिए और अमृत का स्मरण करना चाहिए और स्नान करना चाहिए, एक श्लोक बोलना चाहिए।

देव-दानव संवादे मथ्यमाने महोद धौ।
उत्पन्नोसि तदा कुम्भः वि धृतो विष्णुना स्वयम्।।

तत्पश्चात् एक पूजा कुम्भ की करनी चाहिए और अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक अथवा चार अथवा ग्यारह अथवा इकतालीस कुम्भ घी से भरकर ब्राह्मण को दान देना चाहिए।

पावन स्नान के लिए उमड़ी भीड़ का नज़ारा

विशेष बात यह है कि सही मुहूर्त में, ज्योतिषीय गणना के अनुसार निश्चित समय पर शहर में प्रवेश करना चाहिए।

स्नान - प्रयागराज में दिन में तीन बार स्नान करना चाहिए, जो कि विशेष रूप से विशेष तिथियों को होता है- मकर संक्रांति, माघ कृष्ण चतुर्थी, द्वादशी, चतुर्दशी, अमावस्या, माघ शुक्ल चतुर्थी, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, पूर्णिमा (Equal to Maghi Poornima)। लेकिन सबसे विशेष तीन स्नान हैं- मकर संक्रांति, अमावस्या, बसंत पंचमी।

कुम्भ मेला पर प्रयागराज में आया एक भक्त

मकर संक्रांति का स्नान माघ का सबसे विशेष पर्व है। इसके एक दिन पहले उत्तर भारत में लोहड़ी का पर्व मनाया जाता है जो कि फसल कटाई का त्यौहार है जिसमें अलाव जलाया जाता है और फसल उत्पाद, गन्ने की ईखें, सूखा चावल, तिल डाला जाता है। उत्तर भारत में खिचड़ी जो कि दाल, चावल और सब्जी से बनायी जाती है। संक्रांति के दिन दान दी जाती है। एक बड़ा मेला जो कि प्रतिवर्ष त्रिवेणी, प्रयागराज में होता है, माघ मेला कहलाता है। यह तीन दिवसीय पर्व 13, 14 व 15 जनवरी को मनाया जाता है।

महाकुम्भ मेला पर स्वयं को कष्ट देकर सहन करने का अभ्यास करता एक साधु

स्नान परम्परा का एक महत्वपूर्ण पर्व बसंत पंचमी भी है जिसे सरस्वती के सम्मान में मनाया जाता है। इसमें अन्य देवताओं की भी पूजा की जाती है और पीला रंग पहना जाता है।

अमावस्या के दिन नये चन्द्र दिवस का प्रारम्भ होता है। यह पूर्णिमा तक चलता है। इस दिन भी स्नान महत्वपूर्ण और पवित्र होता है।

शिवरात्रि एक सीधा-सादा और आडम्बरहीन पर्व है जो कि फाल्गुन महीने में पूर्णिमा

हिन्दू श्रद्धालु

के बाद, 14वीं रात्रि को कृष्ण पक्ष में होता है। इसमें प्रार्थना, व्रत और पुराने पापों के प्रायश्चित, रात्रि भर जागरण और शिव की पूजा इस पर्व का चिन्ह है।

दान - तीर्थराज प्रयाग में भक्त से प्रत्येक अवसर पर दान देने का निवेदन किया गया है, न कि सिर्फ कुम्भ स्नान के अवसर पर। इन विभिन्न दान को, धर्मदान, कामदान, लज्जादान, हर्षदान, अभयदान, नित्य-मध्य-अधम-दान, सात्विक-राजसिक-तामसिक-दान, दान,

कुम्भ मेला के दौरान अपनी तम्बू में बैठा एक भक्त

बारह वर्षों में एक बार होनेवाले कुम्भ मेला में भक्तसमूह का अंदाजा

अतिदान, महादान आदि। कुछ दान विशेष रूप से बताये गये हैं - लक्षदीपदान, सर्वस्वदान, किंचितदान, फलदान, दशादान, ताम्बूलदान, अन्नदान, गोदान (इसे महादान भी कहा जाता है), गुप्तदान। प्रत्येक दान के लिए विशेष नियम बताये गये हैं।

व्रत - कुम्भ पर्व में कुछ निहायत व्यक्तिगत धार्मिक क्रियायें होती हैं, जैसे-व्रत। हिन्दुत्व व्रतों पर आधारित है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि प्रयाग में व्रतों को करने का महत्व

नागाबाबा की छवि

बताया गया है। व्रतों से तीर्थयात्री को पुण्य मिलता है। इन व्रतों को कुछ विशेष तिथियों में करना चाहिए। इन व्रतों को इस प्रकार विभाजित किया गया है- नित्य, नैमित्तिक, काम्य, नित्यकाम। विशेष व्रत एकादशी का होता है जिसके बारे में कई पुराणों में बताया गया है। वर्तमान में एकादशी का व्रत विशेषकर महिलाओं में बहुत लोकप्रिय है। एक विशेष व्रत तीर्थ में ''मुण्डन'' का भी होता है, जो महिलाओं के लिए भी होता है।

श्राद्ध, पूजा, यज्ञ - प्रयाग में अन्य कई महत्वपूर्ण धार्मिक संस्कार किये जाते हैं, उदाहरणस्वरूप-श्राद्ध, यज्ञ, कई तरह की पूजायें। एक पूजा, जो एक लाख फूलों से की जाती है- दम्पति पूजा, रूद्रानुष्ठान आदि। प्रयाग में रहने वाले तीर्थयात्री को, चाहे वह एक दिन अथवा एक माह वहाँ रहे, उसे सदा ईश्वर की अथवा अपने पूर्वजों की आराधना करनी चाहिए और लगातार धार्मिक संस्कारों को करते रहना चाहिए।

(v) कुम्भ में अखाड़ा - कुम्भ में अखाड़ों की परम्परा और साधुओं द्वारा पवित्र नदियों के तट पर नग्न हो शाही यात्रा में जाने तथा सामूहिक स्नान करने की परम्परा कैसे प्रारम्भ हुई तथा कब इसे कुम्भ पर्व से जोड़ा गया, इसकी निश्चित तिथि व काल का उल्लेख कर पाना कठिन है। पवित्र नदियों के जल में साधुओं के नग्न हो स्नान करने की परिपाटी तो इस मान्यता से जोड़ दी गयी कि गंगा में गृहस्थों द्वारा छोड़े गये पाप के भार को बालयोगी स्नान के बाद अपने साथ ले जाते हैं।

'अखाड़ा' शब्द का अर्थ है ऐसे लड़ाकू नागाओं का संगठन जो हथियारों का प्रयोग करते थे। मुख्य रूप से प्राचीन काल में भारत के साधु-संतों का एक ऐसा समूह होता था जो संकट के समय में राजधर्म के विरुद्ध परिस्थितियों में, राष्ट्र-रक्षा और धर्म-रक्षा के लिए कार्य करता था। संकट के समय अखाड़े के साधु अपनी अस्त्र विद्या का भी प्रयोग करते थे, उदाहरणार्थ-दशनामी संन्यासी।

मान्यता है कि शंकराचार्य ने सनातन धर्म की स्थापना के लिए कई कदम उठाए थे। उन्होंने चार मठों की स्थापना के साथ ही मठों और मंदिरों की सम्पत्ति लूटने वालों और श्रद्धालुओं को सताने वालों का मुकाबला करने के लिए सनातन धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की सशस्त्र शाखाओं के रूप में अखाड़ों की शुरुआत की। शंकराचार्य ने जोर दिया कि युवा साधु व्यायाम करके अपने शरीर को सुदृढ़ बनाएं और शस्त्र संचालन का अभ्यास करें। बाह्य आक्रमणों के उस दौर में इन अखाड़ों ने सुरक्षा कवच का काम किया। कई बार स्थानीय राजा-महाराजा विदेशी आक्रमण की स्थिति में नागा योद्धाओं की मदद लिया करते थे।

जे. एन. सरकार के अनुसार नागा संन्यासी के बारे में कहा जाता है कि इन्होंने हरिद्वार में वैरागियों पर विजय प्राप्त की जो कि वैष्णव साधु थे। कुंभ स्नान के समय 1253 ई. में हुआ यह खूनी संघर्ष भारतीय धार्मिक इतिहास का जाना माना तथ्य है। 1398 ई. में तैमूरलंग ने

अपने तम्बू में बैठा एक युवा हिन्दू पुजारी

भक्तों की हत्या हरिद्वार में की (H.R. Neveill-District Gazetteer of Agra & Avadh Vol-2, Sharanpur, Page 254)।

दबिस्तान-ए-मज़ाहिब (पारसी धार्मिक ग्रन्थ, 17वीं शताब्दी) में मुण्डी (वैरागी) संन्यासी (नागा) में खूनी संघर्ष हुआ (1640 ई0), संन्यासी विजयी हुए और मुण्डी मारे गये।

कैप्टन टॉमस हार्डविक ने बताया है कि 1796 में (हरिद्वार) शैव व सिक्ख साधुओं के बीच लगातार झगड़े होते थे। 1906 में शैव-निर्वाणी के बीच झगड़ा प्रयाग में हुआ।

साधुगण एवं नागा बाबा

कहा जाता है कि यह पर्व नागा साधुओं का था और विभिन्न मत इसके साथ जुड़ गये। नागा मत के संगठन विषयक, उनके पदाधिकारियों का चुनाव, भक्तों को नागा बनाने की प्रक्रिया कुंभ में होती है। परम्परागत रूप से कुंभ स्नान में नागा साधुओं को प्रमुख स्थान दिया जाता है।

जदुनाथ सरकार (History of Dashnami Naga Sanyasies) के अनुसार 1750 ई. के पहले अखाड़ों की उत्पत्ति और इतिहास के विषय में कोई प्रमाणित सूचना नहीं

कुम्भ मेला पर हिन्दू श्रद्धालुओं का आगमन

है, लेकिन पाण्डुलिपि के आधार पर उन्होंने बताया कि निम्न अखाड़े निर्वाणी अखाड़े ने कायम किये थे।

दशनामी संन्यासी सम्प्रदाय के इतिहास पर लेख लिखने वाले गिरी स्वामी सदानन्द का कहना है कि जितने भी अखाड़े हैं, ये अकबर और औरंगजेब के काल के बीच स्थापित हुए।

शाही स्नान के दिन ये अपने निश्चित क्रमानुसार शाही जुलूस में चलते हैं। स्नान हेतु पहले जाने के लिए वैष्णव और शैव मतों के बीच संघर्ष होता रहा है। पहले जाने के लिए

ही वर्चस्व स्थापित करने के लिए यह अखाड़े तलवार आदि लेकर शक्ति-प्रदर्शन करते हैं। ब्रिटिश शासन ने 1879 ई. के बाद पुरानी प्रथा को सम्मानित किया और कुछ नये नियम भी बनाये जो आज भी प्रभावी हैं- सबसे पहले शैव नागा, फिर वैष्णव वैरागी, उदासी नानक पंथी और अन्त में निर्मल सिक्ख साधु।

इन मेलों में सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों (अखाड़ों) के सैकड़ों साधु-संन्यासी भी आते हैं और वे मुख्य स्नान पर्वों पर विधिवत् जुलूस बनाकर नदी तट की ओर जाते हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय का एक निजी शिविर होता है और जुलूस में केवल उन्हीं को भाग लेने की अनुमति होती है जिन्हें इसका परम्परा सिद्ध अधिकार प्राप्त होता है। जुलूस का नेतृत्व निर्वाणी सम्प्रदाय के साधु करते हैं, ये नागा गोसाईं कहलाते हैं और शैव मत के अनुयायी होते हैं। ये नग्न रहते हैं और जटा धारण करते हैं और प्रत्येक साधु के पास एक घण्टी होती है। यह सम्प्रदाय धन-सम्पन्न है। प्रयागराज नगर के दारागंज में इनका विशाल मठ है और इसका कोई सदस्य भिक्षा नहीं मांगता है।

जुलूस में दूसरे क्रम पर निरंजनी होते हैं, यह भी शैव सम्प्रदाय के हैं और नग्न रहते हैं, यह भी दारागंज में रहते हैं और व्यापक

प्रयागराज के अखाड़े में स्वागत करते साधुगण

रूप से महाजनी का व्यवसाय करते हैं। इनके बाद जुलूस में वैरागियों का स्थान रहता है। यह भ्रमण करने वाले साधु हैं, इनके तीन उप-विभाग हैं जो निर्वाणी, निर्मोही और दिगम्बरी कहलाते हैं।

इनके पश्चात् जुलूस में छोटा पंचायती अखाड़ा आता है जो पंजाब के उदासियों का निकाय है। मुट्ठीगंज में इस अखाड़े का बहुत बड़ा मठ है, यह लोग मूले रूप से सिक्ख थे जो हिन्दू हो गये। यह लोग अब भी सिक्खों के गुरु ग्रन्थ साहिब को अपने प्रमुख धर्मग्रन्थ के रूप में आदर करते हैं। इसी सम्प्रदाय की एक सम्पन्न शाखा बड़ा पंचायती अखाड़ा है (जिसका

प्रधान केन्द्र कीडगंज में है)। बन्धुआ हसनपुर (जिला-सुल्तानपुर) के नानक शाही और निर्मली (जो सिक्ख हैं और इनका मठ कीडगंज में है तथा जो महाजनी करते हैं) इसी अखाड़े से सम्बद्ध हैं। इन दोनों सम्प्रदायों के साथ-साथ बिन्दवासी भी जुलूस में भाग लेते हैं।

वैरागियों को छोड़कर शेष अखाड़े जुलूस में बड़ी सज-धज के साथ चलते हैं जिनमें अनेक हाथी, शहनाई वादक और उनके महन्तों की पालकियाँ होती हैं।

प्रारम्भ में 6 मुख्य अखाड़े थे (मेले में 1882 ई. में लगे कैम्प के अनुसार)-

1. निर्वाणी - नागा गोशाई।
2. निरंजन - इनके साथ ''जूनी'' जुड़े।
3. वैरागी - इनमें तीन मत सम्मिलित थे-निर्वाणी, निर्मोही, दिगम्बरी।
4. छोटा अखाड़ा-पंचायती (उदासी)।
5. बड़ा अखाड़ा पंचायती - इसके साथ बंधुआ अखाड़ा।
6. निर्मली (सिख) - जिनके साथ थे वृन्दावनी।

1906 के अभिलेखों के अनुसार फकीरों के अखाड़ों का जुलूस निम्नलिखित क्रम में निकला था-

1. निर्वाणी
2. निरंजनी - जूना
3. वैरागी - निर्वाणी, निर्मोही, दिगम्बर
4. छोटा पंचायती अखाड़ा
5. बड़ा पंचायती अखाड़ा और बन्धुआ हसनपुर अखाड़ा
6. निर्मल एवं वृन्दावनी।

वर्ष 1918 का क्रम वर्ष 1906 के समान है। सिर्फ वैरागियों का विभाजन नहीं दर्शाया गया। वर्ष 1954 में इन अखाड़ों की संख्या 8 हो गयी -

1. महानिर्वाणी (संन्यासी अखाड़ा)
2. निरंजनी-जूना (संन्यासी) अखाड़ा
3. निर्वाणी (वैरागी) अखाड़ा
4. दिगम्बर (वैरागी) अखाड़ा

5. निर्मोही (वैरागी) अखाड़ा
6. छोटा पंचायती (उदासी) अखाड़ा
7. बड़ा पंचायती (उदासी) अखाड़ा
8. निर्मल-वृन्दावनी अखाड़ा।

वर्तमान में कुल 13 अखाड़े हैं-

1. श्री पंचायती अखाड़ा महानिर्वाणी, दारागंज प्रयागराज
2. श्री पंच अटल अखाड़ा, काशी
3. श्री पंचायती अखाड़ा निरंजनी, दारागंज प्रयागराज
4. श्री तपोनिधि आनन्द अखाड़ा पंचायती, नासिक (महाराष्ट्र)
5. श्री पंचदशानन दशनाम जूना अखाड़ा, काशी
6. श्री पंचदशनाम् आवाहन अखाड़ा दशाश्वमेध घाट, काशी
7. श्री पंचदशनाम अग्नि अखाड़ा, श्रीनगर, जूनागढ़
8. श्री दिगम्बर अनि अखाड़ा, गुजरात
9. श्री निर्वाण अनि अखाड़ा, अयोध्या
10. श्री पंच निर्मोही अनि अखाड़ा, वृन्दावन
11. श्री पंचायती बड़ा उदासी अखाड़ा, कीडगंज प्रयागराज
12. श्री पंचायती नया उदासी अखाड़ा, हरिद्वार
13. श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा, हरिद्वार।

कुम्भ पर्व में अखाड़ों के स्नान के लिए जुलूसों का क्रम - अखाड़ों में यह व्यवस्था अपनायी गयी है कि हरिद्वार में निरंजनी अखाड़ा, जूना, आवाहन, आनन्द, निर्वाणी, अटल। प्रयाग में पहले निर्वाणी अखाड़ा के साथ अटल, फिर निरंजनी, जूना, आवाहन, फिर आनन्द। नासिक में जूना, निर्वाणी, निरंजनी। उज्जैन में सारे अखाड़े एक ही पंक्ति में जाते हैं। यह सारी व्यवस्था अखाड़ों के बीच संघर्ष को रोकने के लिए की गयी थी।

उपर्युक्त अखाड़ों के अतिरिक्त बहुसंख्यक अन्य साधु भी इन मेलों में आते हैं और अपने-अपने शिविर लगाते हैं। दारागंज के रामानुजी और कीडगंज स्थित बाबा हरिदास की धर्मशाला के रामानन्दी नामक दो वैष्णव सम्प्रदाय भी कुम्भ पर्व के धार्मिक कार्य-कलाप में भाग लेते हैं।

← प्रयागराज में कुम्भ मेला पर हाथ में लैम्प थामे हिन्दू भक्त

कुम्भ मेला पर पारम्परिक आभिवादन करती एक महिला साध्वी

(vi) योगदर्शन एवं कुम्भ - यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि योगदर्शन और कुम्भ का सम्बन्ध प्राचीन काल से है। कुम्भ पर्व पर आने वाले योगी, संन्यासी और साधु कुम्भ मेले में अपनी योग विद्वता और योगकला का प्रदर्शन करते हुए दिखते हैं। कुम्भ मेले में शिविरों में योगीगण योग सम्बन्धी ज्ञान भी प्रदान करते हैं।

योग का अर्थ है जोड़ना, पहली बार यह उत्तरकालीन उपनिषदों में प्राप्त होता है (Weber- Indian Literature, P.-239)। योगविद्या एक जटिल प्रणाली है जो दर्शन (Doctrine) के सिद्धान्त के व्यवहारिक अभ्यास को बढ़ावा देने के लिए आत्मा, व्यक्ति और जीव के बीच में एकीकरण स्थापित करता है। स्वामी रामकृष्णानन्द ने ''ब्रह्मवादिन'' में पृष्ठ संख्या-511 में विवरण दिया है कि योग को चार प्रकार से

व्यवहार में लाया जाता है:- मंत्र योग, लय योग, राज योग, हठ योग।

1. **मंत्र योग** - इसके अन्तर्गत पूरे ध्यान से एक निश्चित शब्द को बार-बार दोहराया जाता है। वह शब्द जो देवताओं को इंगित करता है।
2. **लय योग** - इसमें अपना सारा ध्यान एक वस्तु और उसके विचार पर लगाया जाता है जिससे सबकुछ एकाकार हो जाये अर्थात् ईश्वर के आदर्शवादी रूप को अपनाते हुए परमात्मा के साथ मिल जाना।
3. **राज योग** - इसके अन्तर्गत श्वांस-प्रश्वांस पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं जिससे मन-मस्तिष्क पर नियंत्रण प्राप्त हो सके। ऐसा माना गया कि मस्तिष्क की एकाग्रता से श्वांस को रोका जा सकता है। यही प्राणायाम है। स्वामी विवेकानन्द ने न्यूयार्क में 1895-96 में राज योग पर भाषण दिया था।
4. **हठ योग** - इसका सम्बन्ध शरीर के सामान्य स्वास्थ्य से है और इसके अन्तर्गत कुछ आसनों द्वारा ध्यान लगाया जाता है। अपनी आँखों को एक ध्यान-बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है और विशेष रूप से अपनी नाक की नोक पर दृष्टि केन्द्रित की जाती है (Max Muller - The Life of Sayings of Ramkrishna - P. - 08)। हठ योग से सम्बन्धित प्रारम्भिक उल्लेख खेकरविद्या (Khecarvidya) में मिलता है (Routs of Yoga - Mallinson, 2017)। सर जेम्स मैलिन्सन, जो कि संस्कृत एवं हठ योग विषय के विशेषज्ञ हैं और अंग्रेज महन्त हैं, इन्होंने हठ योग के आसनों, धारणा, ध्यान, समाधि सम्बन्धित इतिहास लिखा है (The

Shiv Samhita - A Critical Addition An English Traslation)।

योगी वह व्यक्ति होता है जो योग का अभ्यास अपनी आत्मा को परमात्मा से मिलाने के लिए (Divine Unity) करता है। योग का अभ्यास सभी योगी नहीं करते हैं। यह धर्म सिद्ध दृढ़विश्वास है जिसे भारतवर्ष में सार्वभौमिक रूप से माना जाता है, इसमें विवाहित पुरुष, गृहस्थ, सामान्य व्यक्ति आदि सभी सम्मिलित होते हैं।

योगीगण शिव और भैरव को विशेष सम्मान देते हैं जिसमें शिव को ही प्रथम योगी माना जाता है, इन्हें महायोगी की संज्ञा दी गयी है। सभी जातियों के लोग योगी बन सकते हैं।

नाथ सम्प्रदाय के सभी योगी रूद्राक्ष पहनते हैं, अगर वस्त्र पहनते हैं तो वह नारंगी-पीला होता है, बाल जटा स्वरूप होते हैं। प्रारम्भ में योगी मृतकों को दफनाते थे बैठी हुई मुद्रा में जिनका मुख उत्तर की ओर होता था।

नाथपंथी ''नवनाथ'' का आदर करते हैं जो हिमालय पर्वत पर निवास करते हैं, उनके नाम हैं:- गोरखनाथ, मछन्दरनाथ, चरपुतनाथ, मंगलनाथ, घोगूनाथ, गोपीनाथ, प्राणनाथ, सूरतनाथ, चम्बननाथ। ये चौरासी सिद्ध योगियों को भी मानते हैं।

जॉन कैम्पवेल ओमन ने अपनी पुस्तक (The Mystics, Ascetics, and Saints of India, Publisher - T. Fisher Unwin - 1903) में प्रो. एच.एच. विल्सन के विचार प्रकट किये, कि योगी आत्मा और परमात्मा के मिलन के बाद अपने शरीर से स्वतन्त्र हो जाता है, और भौतिक स्वरूप से मुक्त हो जाता है फिर उसका एकीकरण शिव से हो जाता है और उसे मुक्ति मिल जाती है।

वर्तमान में 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है।

योग

डा. अनिता स्वामी

सहायक-आचार्या, संस्कृत विभाग

इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान-परम्परा का सनातन ज्ञान 'योग' है। 'योग' शब्द का प्रयोग श्रुति एवं स्मृति ग्रन्थों में अति पुरातन काल से होता आया है। योग का ज्ञान इस ब्रह्माण्ड में अनादि काल से विद्यमान है अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व भी योग विद्यमान था। अतएव "योग" उतना ही प्राचीन है जितनी यह कि "सृष्टि"। योग-साधना-पद्धति से ही प्राप्त ऋतम्भरा-प्रज्ञा के द्वारा वैदिक ऋषियों ने ऋचाओं का साक्षात्कार किया एवं सृष्टि के उत्पत्ति के कारण 'ब्रह्म' (चेतन), कार्यरूपी सृष्टि तथा उसके शाश्वत एवं अपरिवर्तनशील

नियमों का अनुभव प्राप्त किया। अतएव योग भारतीय-प्राचीन परम्परा एवं संस्कृति की अमूल्य धरोहर है जो कि आज भी सुरक्षित है एवं मानव-सभ्यता के लिये उपयोगी है।

'योग' मोक्ष के 'साधन' एवं 'साध्य' दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। "युज् समाधौ" धातु से "घञ्" प्रत्यय लगाने से निष्पन्न योग शब्द 'चित्तवृत्तिनिरोध'[1] रूपी 'समाधि' के अर्थ में है जो कि 'योग' के 'साधन' के रूप में स्वीकृत है। अतएव पतंजलि कृत योग-दर्शन में 'योग' शब्द 'साधन' अर्थ में प्रयुक्त है। युजिर् योगे धातु से बने 'योग' शब्द "आत्मा एवं परमात्मा के संयोगरूप" साध्य के अर्थ में प्रयुक्त है, जो कि वेदान्त द्वारा स्वीकृत है।[2] बृहदारण्यकोपनिषद् (2/4/5) के सारतम उपदेश याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद- 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'- में भारतीय जीवन-प्रवाह की समग्र आशा, आकांक्षा का पर्यवसान होता है। आत्मतत्त्व के विश्लेषण एवं उसके साक्षात्कार के साधन और स्वरूप के निरूपण में ही योग-दर्शन का तात्पर्य है। महाभारत में शुकदेवजी ने कहा है कि- 'न तु योगमृते प्राप्तुं शक्या सा परमागतिः।' इसीलिये श्रीमद भगवद्गीता में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को 'योगी' बनने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है -

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ श्रीमद भगवद्गीता, 6/46 ॥

महाभारत एवं याज्ञवल्क्य-स्मृति के अनुसार ऋग्वेदोक्त "हिरण्यगर्भ" (ऋग्वेद 10/21) देवता ही योगशास्त्र के पुरातन ज्ञाता (वेत्ता) हैं।[3] श्रीमद्भागवत में कहा है कि हे योगेश्वर! यह योगकौशल वही है जिसे भगवान् हिरण्यगर्भ ने कहा था।[4] महाभारत (11/339/69) के अनुसार भगवान् नारायण (विष्णु) ही हिरण्यगर्भ हैं। श्रीमद भगवद्गीता (महाभारत भीष्मपर्व-अध्याय-25-42) के चतुर्थ अध्याय (4/1-3) में श्रीकृष्ण, अर्जुन से कहते हैं कि-

"मैंने इस अविनाशी-योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा था और मनु ने अपने राजा इक्ष्वाकु से कहा था।[5] इस प्रकार परम्परा से प्राप्त-योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु उसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्त हो गया था।[6] तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वह परम रहस्ययुक्त, पुरातन-योग आज मैंने तुझको कहा है।"7

इस प्रकार परम्परा से प्राप्त 'योग' वैदिक एवं लौकिक वाङ्मय में प्राप्त होता है। वेदों (ऋग्वेद - 1/5/3, 11/18/7, 1/30/17 यजुर्वेद- 11/2, सामवेद- 2/2/7/9 (पूर्वार्चिक), 1/2/10/3 (उत्तरार्चिक), तथा अथर्ववेद-20/26/1, 20/99/1),

ब्राह्मण-ग्रन्थों (ऐतरेय-ब्राह्मण-11/5, शतपथ-ब्राह्मण- 3/2/2/26, तैत्तिरीय-ब्राह्मण-1/2/1/15),आरण्यकों(ऐतरेय-आरण्यक-2/1/6,शांखायन-आरण्यक-5/2-3), उपनिषदों (बृहदारण्यकोपनिषद्-3/7/2, मुण्डकोपनिषद्-3/1/5, श्वेताश्वतरोपनिषद्-1/3, 2/8-9, मैत्रायणी- उपनिषद्-6/18, कठोपनिषद् 1/2/12, 2/3/10-11), रामायण (सुन्दरकाण्ड), महाभारत (शान्तिपर्व), पुराण (ब्रह्मपुराण, अध्याय 235, भगवद्पुराण-अध्याय- 2,12, अग्निपुराण- अध्याय- 352-58, गरुड़पुराण- अध्याय - 14, 49 व 118, शिवपुराण - अध्याय - 17, 37-39, मार्कण्डेय पुराण - अध्याय -36-43) तथा वैदिक-दर्शन के सूत्र-साहित्यों में पूर्णतया योग का स्वरूप उपलब्ध होता है। कठोपनिषद् में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि- जिस समय पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के सहित आत्मा में स्थित हो जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती, उस अवस्था को परमगति कहते हैं। उस स्थिर इन्द्रियधारण को ही 'योग' कहते हैं।[8] इस प्रकार स्पष्ट है कि सृष्टि के प्रारम्भ से पूर्व 'योग' विद्यमान था तथा त्तात्विक-ज्ञान की प्राप्ति के साधन के रूप में 'योग' की महत्ता सर्वसम्मत रूप से विद्यमान थी।

योग के प्रकार

पद्धतियों की भिन्नता के आधार पर 'योग' के विभिन्न प्रकार होते हैं, उसमें से वैदिक-दर्शन के अन्तर्गत 7 प्रकार के प्रमुख योग होते हैं- राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, मन्त्रयोग, लययोग और हठयोग। योगराजोपनिषद् (1,2) में मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग के रूप में योग को विभक्त किया गया है, जबकि 'योगशिखोपनिषद् (129, 130)' में मंत्रयोग, लययोग, हठयोग एवं राजयोग को एक ही महायोग की अन्तर्भूमिकाओं के रूप में स्वीकार किया गया है। जीव एवं ब्रह्म के संयोग को 'परमयोग' के रूप में वर्णित करनेवाले 'गरुड़ पुराण' के 14वें अध्याय में 'ध्यान-योग' का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतपुराण (11/206) में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग के रूप में मानव-कल्याण हेतु 'योग' का वर्णन प्राप्त होता है। देवी भागवत-पुराण में मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग को स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण द्वारा चार प्रकार के योग- ज्ञानयोग, अभ्यास-योग, भक्तियोग व कर्मयोग- का वर्णन किया गया है। इस प्रकार वैदिक-दर्शन में प्राप्त 'योग' को हम सात प्रमुख भागों में विभक्त कर सकते हैं जो इस प्रकार हैं -

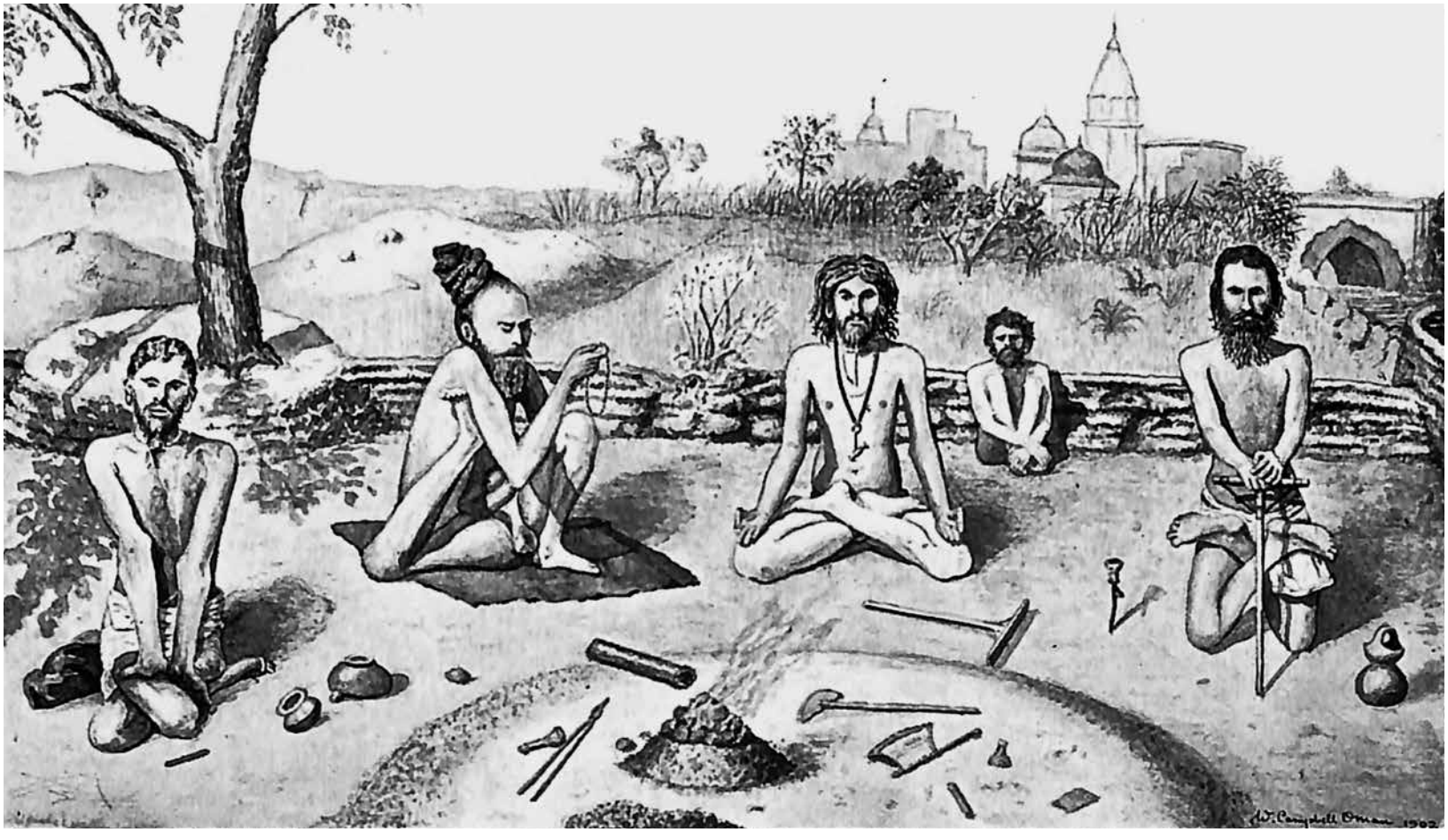

(1) राज-योग- मंत्रयोग, लययोग, हठयोग का फल राजयोग है, अतः यह योग सर्वश्रेष्ठ योग अर्थात् 'राजयोग' है। साधारणतया 'राजयोग' को पातंजल का सूचक माना जाता है, क्योंकि यह समाधि के साधन के रूप में वर्णित है। योगशिखोपनिषद् (1/136) में राजयोग को परिभाषित करते हुए कहा गया है - 'रजसो रेतसो योगात् शक्तिशिवयोगाद् राजयोगः।' श्रीमद्भगवद्गीता (12/9) में 'राजयोग' को 'अभ्यास-योग' के नाम से कहा गया है। श्रीकृष्ण, धनञ्जय को कहते हैं कि - "यदि तू अपने मन को अचल स्थापन करने में असमर्थ हो तो अभ्यास रूपी योग के द्वारा मुझको प्राप्त करने की इच्छा कर।" मन को अन्य विषयों से हटाकर पुनः-पुनः आलम्बन पर केन्द्रित करना ही 'अभ्यास-योग' अर्थात 'राजयोग' है। जो अभ्यास-योग से मन एवं प्राण दोनों को ही आत्मा में लीन कर लेते हैं, वे राजयोगी सर्वश्रेष्ठ हैं।

(2) हठ-योग - हठ पद दो वर्णों (ह - सूर्य + ठ - चन्द्रमा) से मिलकर बना है। हठयोग का अर्थ है बलपूर्वक शरीर व मन को नियन्त्रण से 'योग-साधना' में सिद्धि लाभ प्राप्त करना। 'हठयोग' के सम्बन्ध में नाथयोगी सम्प्रदाय विशेष ज्ञान रखता है, पातंजलयोग के 'अष्टाङ्ग-योग' में 'शरीर-नियन्त्रण' का अत्यल्प वर्णन प्राप्त होता है। 'हठयोग' के आधारभूत ग्रन्थ 'हठयोगप्रदीपिका'- (4/103) में कहा गया है कि - 'हठयोग' का लक्ष्य 'राजयोग' ही है। हठयोग की साधना का अन्तिम साध्य इड़ा और पिङ्गला की सुषुम्ना से, 'प्राण' और 'अपान' वायुओं की जीवन-शक्ति के केन्द्रबिन्दु से, 'बिन्दु' और 'रज' को सम्पूर्ण मानसिक-शारीरिक शक्ति के केन्द्रबिन्दु से और अन्ततः चेतना की उच्चतम स्थिति में शिव और शक्ति की एकता स्थापित करना है जो कि 'राजयोग' का लक्ष्य है।

(3) लय-योग- 'लययोग' से तात्पर्य है 'लय' के द्वारा 'समाधि' को प्राप्त करना। योगतत्त्वोनिषद्[9] के अनुसार 'लययोग' का स्वरूप 'चित्तलय' है। कठोपनिषद् (1/3/3) में ब्रह्म-साक्षात्कार के साधन के रूप में 'लय' का वर्णन करते हुए कहा गया है कि - "विवेकी पुरुष वाक्-इन्द्रिय का मन में उपसंहार करे, उसका प्रकाशस्वरूप बुद्धि में लय करे, बुद्धि को महत्-तत्त्व में लीन करे और महत्व को शान्त आत्मा में लीन करे।"[10] हठयोगप्रदीपिका के अनुसार राजयोग के सन्दर्भ में ही हठयोग और लययोग की सार्थकता है। दूसरे शब्दों में हठयोग और लययोग, राजयोग की प्राप्ति में सहायक है, क्योंकि राजयोगी काल की सीमा से परे अर्थात् कालातीत अवस्था को प्राप्त होकर मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेता है।[11]

(4) मन्त्र-योग - विशिष्ट देव, अवतार या ईश्वर के नाम का या रहस्यमय बीजाक्षरों का जप मंत्रयोग है। योगतत्त्वोपनिषद् (मन्त्र 21, 22) में कहा गया है - "जो अल्पबुद्धि वाला साधक मातृकादि से युक्त मन्त्र का 12 वर्षों तक जप करते हुए मन्त्रयोग का सेवन करता है वह अणिमादि सिद्धि सहित ज्ञान को क्रमशः प्राप्त कर लेता है।"[12] राधाकृष्णन ने 'रोगमुक्ति' के साधन के रूप में 'मन्त्रयोग' के महत्त्व को स्वीकार किया है, क्योंकि 'मन्त्रयोग' द्वारा रोगमुक्ति की सहायिका 'मानसिक-शक्ति' में वृद्धि होती है। शिव-पुराण के 17वें अध्याय में 'ॐ' मन्त्र के उच्चारण के अभ्यास व फल को बताया गया है। पतंजलि ने भी ईश्वर के वाचक 'प्रणव' के जप से समाधि-लाभ व समाधि-फल की प्राप्ति को बताते हुए मन्त्रयोग के महत्त्व को स्पष्ट किया है।[13]

(5) ज्ञान-योग- श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मतत्त्व की प्राप्ति के साधन के रूप में सांख्ययोगियों के लिये ज्ञान-योग का उपदेश किया गया है।[14] श्रीमद्भगवद्गीता (7/2) में श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं - "मैं तेरे लिये विज्ञानसहित ज्ञान को सम्पूर्णतया कहूँगा, जिसको जानकर संसार में पुनः और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता।"[15] आध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को देखना - यह सब ज्ञान है।[16] इस ज्ञान को जानने वाला भक्त ईश्वर के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।[17]

(6) कर्म-योग- मीमांसा के अनुसार वेदविहित यज्ञादि कर्मों का विधिवत् अनुष्ठान एवं निषिद्ध कर्मों का असम्पादन 'कर्मयोग' है। गीता में कर्मयोग का तात्पर्य 'निष्काम-कर्म' से है। श्रीमद्भगवद्गीता (3/3) में योगियों के लिये 'कर्मयोग' बताया गया है।[18] गीता के अनुसार कर्मों के फल की कामना न करते हुए एवं कर्मों के फल को ईश्वरार्पण करते हुए लोकसंग्रह के लिये कर्मों को संपादित करना ही 'कर्मयोग' है। जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्तिरहित कर्म (निष्काम-कर्म) द्वारा परमसिद्धि को प्राप्त हुए थे। अतएव आसक्ति-रहित कर्म करने वाला मनुष्य परमात्मा को प्राप्त होता है।[19] इसीलिये श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को मन-बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करके सम्पूर्ण कर्मों के फल का त्याग करने का उपदेश दिया गया है।[20] क्योंकि कर्मफल के त्याग से तत्काल ही परम-शान्ति प्राप्त होती है।[21] अतएव 'कर्मयोग' से तात्पर्य 'कर्म-फल-संन्यास' से ग्रहण करना चाहिये।

(7) भक्ति-योग - भक्ति शब्द 'भज्' धातु से बना है। इसका अर्थ सेवा, आराधना करना है। जब भक्त सेवा या आराधना द्वारा भगवान् से साक्षात् सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो वही 'भक्तियोग' है। नारद भक्तिसूत्र (1/2) के अनुसार परमेश्वर के प्रति परम-प्रेमरूप ही भक्ति है।[22] वह अमृतस्वरूपा है।[23] जिस भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य सिद्धि, अमृतत्व व तृप्ति को प्राप्त कर लेता है।[24] श्रीमद्भगवद्गीता (12/12) में श्रीकृष्ण ने भक्त को उत्तम योगी बताते हुए कहा है कि - "जो भक्त ईश्वर में मन को एकाग्र करके निरन्तर ईश्वर के भजन ध्यान में लगे हुए अतिशय श्रद्धा से युक्त होकर ईश्वर के सगुण रूप की उपासना करते हैं वह योगियों में उत्तम योगी है।"[25] श्रीकृष्ण ने भक्तियोग अर्थात् 'ईश्वर के परायण होकर कर्म करना' का फल भगवद्प्राप्ति बताया है।[26]

इस प्रकार पद्धति के आधार पर योग के प्रकारों की भिन्नता होते हुए भी लक्ष्य में एकत्व

है। श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित चारों योगों की उत्तरोत्तर श्रेष्ठता को बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि - अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान विशिष्ट है, ध्यान से सम्पूर्ण कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल परम शान्ति प्राप्त होती है।[27]

पातंजल-योग

'योग' शब्द का प्रयोग पुरातन-काल से होता आया है। सृष्टि के आदिकाल से ही ऋषियों द्वारा योग-साधना के माध्यम से अनुभूत ब्रह्माण्डीय नियमों को अपने शिष्यों को बताया गया। प्रारम्भ में आन्तरिक एवं बाह्य अर्थात् पिण्ड व ब्रह्माण्ड के कारणरुपी "ब्रह्म" साध्य की प्राप्ति के साधन-रूप 'योगविद्या' गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से मौखिक रूप में उपलब्ध था। श्रुति एवं स्मृति ग्रन्थों के आधार पर योग के आदि संस्थापक 'हिरण्यगर्भ' हैं, जिसे पतंजलि मुनि के द्वारा योगसूत्र के माध्यम से सूत्रबद्ध किया गया। अतएव पतंजलिकृत 'योगसूत्र' इस विद्या का प्राचीनतम सूत्र-ग्रन्थ है जो चार भागों में विभक्त है- (1) समाधिपाद (2) साधनपाद (3) विभूतिपाद तथा (4) कैवल्यपाद।

योगसूत्र के निगूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करने में व्यासभाष्य नितान्त कृतकार्य है। 'योगसूत्र-व्यासभाष्य' स्वयं अत्यन्त गूढ़ार्थयुक्त है, अतः उसके अर्थ के विश्लेषण हेतु अनेक टीका-प्रटीकाएँ लिखी गयीं। व्यासभाष्य पर लिखित टीका-प्रटीकाओं के अतिरिक्त योगसूत्र पर लिखित अन्य स्वतन्त्र टीका-प्रटीकाएँ उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार योगसूत्र पर लिखित भाष्य-वार्तिक-टीका-प्रटीकाओं के द्वारा 'योग-दर्शन' पर एक समृद्ध एवं विस्तृत साहित्य प्राप्त होता है।

पातंजल योग-दर्शन में 26 तत्त्वों को प्रमेय रूप में स्वीकार किया गया है। सर्वदर्शन-संग्रह में माधवाचार्य ने इन प्रमेय तत्त्वों को भाव्य-वस्तु कहा है। भाव्य-वस्तु के दो भेद हैं - (1) ईश्वर (2) तत्त्वसमूह।[29] तत्त्व समूह दो प्रकार का है- जड़ (प्रकृति) व अजड़ (पुरुष)।[30] प्रकृति, महत्, अहंकारादि चैबीस जड़-पदार्थ हैं। पुरुष आत्मन् अजड़ है।[31]

सांख्य-योग के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही विभु तत्त्व हैं, अतएव इनका अनादि संयोग है।[32] प्रकृति त्रिगुणात्मक (सत्त्व रजस् तमस्) है तथा सृष्टि-लय की स्थिति में अव्यक्तावस्था में रहने के कारण इसे अव्यक्त प्रकृति कहा जाता है। सृष्टि-उत्पत्ति के समय अनादि अविद्या के कारण पुरुष का प्रकृति से संयोग होता है, तब संयोग के कारण प्रकृति के त्रिगुणों में परस्पर क्रिया होने के कारण व्यक्तावस्था को प्राप्त प्रकृति, सत्त्वप्रधान- चित्त

के रूप में परिणत हो जाती है। चित्त क्रमशः अस्मिता (अहंकार), पंचतन्मात्राओं, एकादश इन्द्रियों, पंच महाभूत और फिर संसार के विभिन्न पदार्थों में परिणत होता रहता है। पंच महाभूत पर्यन्त प्रकृति का 'तत्त्वान्तर-परिणाम' कहा जाता है।[33]

इस प्रकार अव्यक्त प्रकृति गुणत्रय का अलिङ्गपरिणाम है और चित्त (बुद्धि) लिङ्गपरिणाम। गुणों के 6 अविशेष परिणाम हैं- अस्मिता और पंचतन्मात्राएँ।[34] 11 इन्द्रियाँ और 5 महाभूत, गुणों के ये 16 विशेष परिणाम हैं।[35] पुरुष (चितिशक्ति) अपरिणामिनी, अप्रतिसङ्क्रमा, दर्शितविषया, शुद्ध और अनन्ता है।[36] क्लेश, कर्म, विपाक एवं आशय से अपरामृष्ट पुरुष विशेष 'ईश्वर' हैं।[37]

महर्षि पतंजलि ने समाधि द्वारा सृष्टि-उत्पत्ति की प्रक्रिया को जानने के पश्चात् यह अनुभव किया कि सम्पूर्ण सृष्टि जड़ प्रकृति का परिणाम-मात्र है। प्रकृति, चेतन पुरुष के संयोग से चित्त से लेकर पंचमहाभूत पर्यन्त सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करती है। अतएव चेतन तत्त्व के ज्ञान से ही सम्पूर्ण सृष्टि व स्व-स्वरूप को जानना सम्भव है जो कि योग-साधना से ही सम्भव है। इसीलिये पतंजलि ने साधक (अधिकारी) भेद से चार प्रकार के योग का वर्णन किया है-

(1) संप्रज्ञात योग व असंप्रज्ञात योग (उत्तम साधक हेतु)
(2) क्रियायोग (मध्यम साधक हेतु)
(3) अष्टाङ्ग-योग (प्रारम्भिक साधक हेतु)
(4) भक्ति-योग (सर्व सधारण हेतु)

सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात-योग

योग-दर्शन के अनुसार इन्द्रियों के माध्यम से वस्तु का पूर्ण-ज्ञान न होकर आंशिक-ज्ञान होता है। अतएव योग-दर्शन पूर्ण-ज्ञान प्राप्ति हेतु समाधि को साधन के रूप में स्वीकार करता है। व्यास के अनुसार (योगः समाधिः।-योगसूत्रव्यासभाष्य-1/1) समाधि ही योग है। पतंजलि के अनुसार (योगश्चित्तवृत्ति- निरोधः।-योगसूत्र - 1/2) चित्त की वृत्तियों का निरोध 'योग' है। प्रख्या, प्रवृत्ति एवं स्थिति धर्म से युक्त होने के कारण चित्त त्रिगुणात्मक (सत्त्व + रजस् + तमस्) है। त्रिगुणात्मक चित्त की वृत्ति सात्त्विक, राजसिक व तामसिक भेद से तीन प्रकार की होती है। रजस् व तमस् से युक्त सत्त्व अवस्था वाले चित्त में क्लिष्टवृत्ति

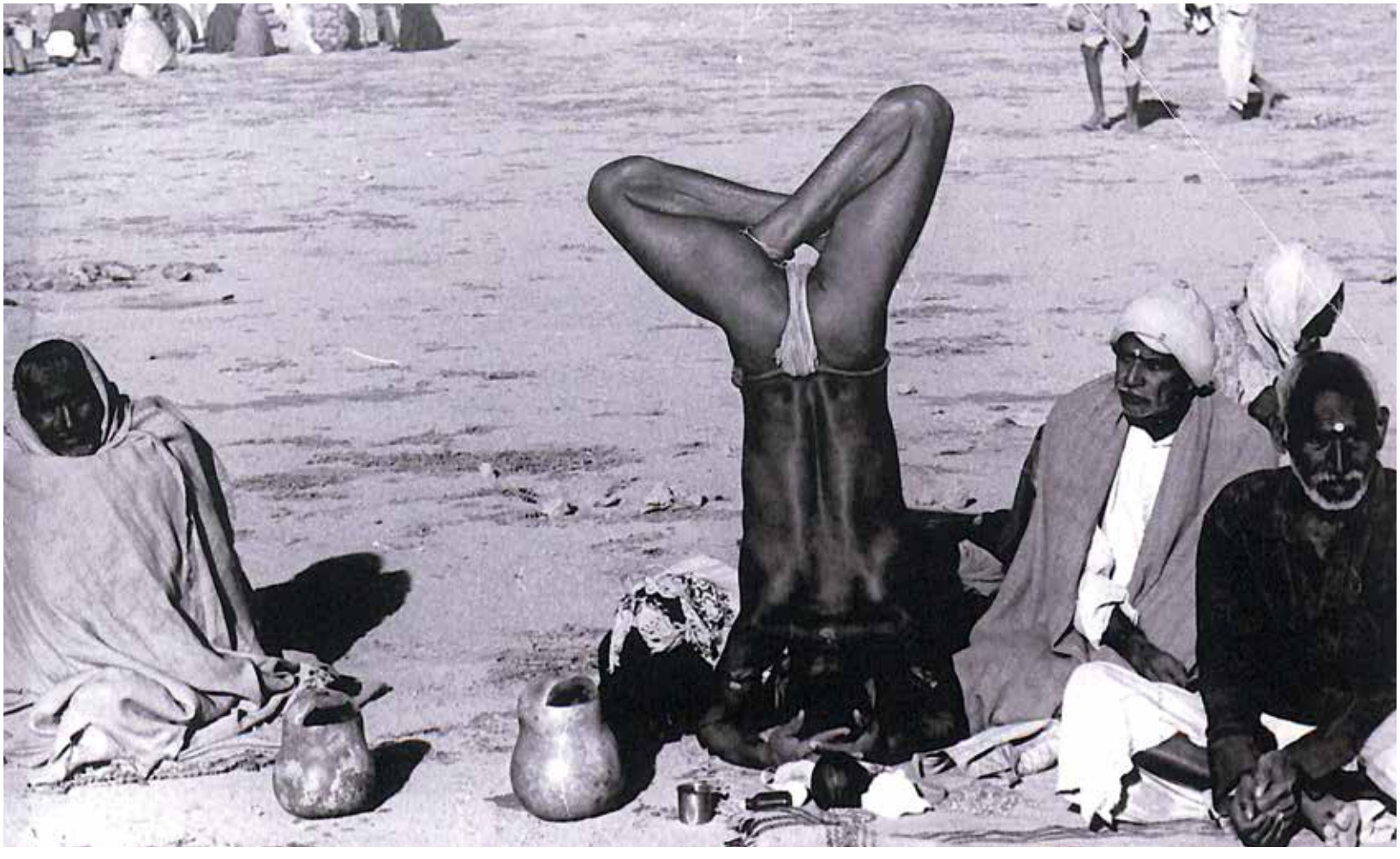

उत्पन्न होती है। अविद्यादि क्लेश से उत्पन्न तथा कर्म-संस्कार-समूह को उत्पन्न करने वाली क्लिष्टवृत्ति जन्म, आयु व भोग की जनिका है।[38] राजसिक व तामसिक वृत्ति का निरोध होने पर शुद्ध सत्त्व प्रधान सात्त्विक-वृत्ति से चित्त में अक्लिष्टवृत्ति उत्पन्न होती है, जो कि अक्लिष्ट-संस्कार की जनक है तथा योगी को विवेक-ज्ञान से युक्त करने में सहायक है। सत्त्वगुण के प्राधान्य से समाहित चित्तवाले योगी को उस वैशारदकाल में सत्य को धारण करनेवाली ऋतम्भरा प्रज्ञा उत्पन्न होती है।[39] इसलिये चित्तवृत्तिनिरोध से तात्पर्य मुख्यतः राजसिक व तामसिक वृत्तियों के निरोध से है। सात्त्विकवृत्ति के उदय से क्लिष्ट-वृत्ति के क्षीणता को प्राप्त होने पर 'संप्रज्ञात-योग' सिद्ध होता है तथा सात्त्विक-वृत्ति का भी निरोध

हो जाने पर 'असम्प्रज्ञात-योग' सिद्ध होता है। इस प्रकार पतंजलि द्वारा स्वीकृत 'योग' दो प्रकार का है - (1) संप्रज्ञात (2) असम्प्रज्ञात।

1. सम्प्रज्ञात-योग: चित्त की एकाग्रावस्था में राजस एवं तामस वृत्तियों के पूर्ण निरोध होने पर सात्त्विक वृत्ति पूर्ण रूप से उदित हो जाती है, फलस्वरूप साधक को पदार्थ का वास्तविक एवं निर्भ्रान्त ज्ञान होता है - 'सम्यक् प्रज्ञायते अस्मिन्निति सम्प्रज्ञातः समाधिः।'- अतएव इस समाधि को 'सम्प्रज्ञातसमाधि' कहते हैं। 'सम्यक् प्रज्ञायते साक्षात्क्रियते ह्येयमस्मिन्निरोधविशेषरूपे योग इति सम्प्रज्ञातो योगः।' एकाग्रता-काल में राजसिक एवं तामसिक वृत्तियों के निरोध होने पर सत्त्वगुणप्रधान चित्त ध्येय पदार्थ का चिन्तन करने में समर्थ होता है। अतएव जो समाधि एकाग्र-भूमि वाले चित्त को होती है तथा आलम्बन रूप से चित्त में स्थित पदार्थ को पूर्णतया प्रकाशित करती है, अविद्यादि क्लेशों को क्षीण करती है, कर्म-बन्धनों (संचित- संचीयमान आदि) को शिथिल करती है तथा निरोध (असम्प्रज्ञात-समाधि) की ओर अभिमुख करती है, वह समाधि, सम्प्रज्ञात-योग कहलाती है।[40] सम्प्रज्ञात-योग की सिद्धि के चार सोपान-क्रम हैं- (1) सवितर्क (2) सविचार (3) सानन्द (4) सास्मिता।

(1) सवितर्क - विशेषेण तर्कणमवधारणं वितर्कः। अर्थात् जिसमें विशेष रूप से निश्चय होता है, उसे 'वितर्क' कहते हैं। वितर्क से युक्त वृत्तिनिरोध 'वितर्कानुगत योग' कहलाता है।[42] योग में वर्णित 26 तत्त्वों के समूहरूप स्थूल-पदार्थ को लेकर योगी चिन्तन की ओर बढ़ता है तो सर्वप्रथम सवितर्क-योग के द्वारा ध्येय विषय के स्थूल-रूप (पंचमहाभूत) का सम्प्रज्ञान होता है।[43]

(2) सविचार - सत्त्वप्रधान चित्त में ध्येय विषय के सूक्ष्मरूप की परिपूर्णता 'विचार' है।[45] चित्त के आलम्बन 'स्थूलरूप' (पंचमहाभूत) के कारण 'सूक्ष्मरूप' (पंचतन्मात्रादि) का समाधि द्वारा साक्षात्कार होना ही 'सविचार' अथवा 'विचारानुगत-योग' कहलाता है।[46]

(3) सानन्द - आनन्दो ह्लादः विचारः सूक्ष्मतर आभोगस्तृतीयः (योगविवरण -1/17) चित्त का 'विचार' से सूक्ष्मतर 'ह्लाद' विषयक आभोग 'आनन्द' है। स्थूलविषयक इन्द्रिय के

विषय में चित्त का ह्लाद रूप आभोग 'आनन्द' कहलाता है।[48] सत्त्वगुण सुखात्मक होता है। अतएव सत्त्वप्रधान अस्मिता (अहंकार) से उत्पन्न एकादशेन्द्रियाँ सुखात्मक अर्थात् आनन्द रूप हैं। आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि में योगी स्थूल इन्द्रियों के बिना चित्त के माध्यम से 'आनन्दरूपी ज्ञान' का साक्षात्कार (आभोग) करता है।[49] 'आनन्दानुगत-योग' में "मैं सुखी हूँ"। इस प्रकार की आनन्दविषयिणी चित्तवृत्ति के उदित होने पर चित्त की पूर्णतः सुखाकाराकारिता ही 'सानन्द' अथवा 'आनन्दानुगत-योग' कहलाता है।[50]

(4) सास्मिता - 'दृग्' (पुरुष/चितिशक्ति) एवं 'दर्शन' (प्रकृति) शक्ति की एकात्मकता ही 'अस्मिता' है। चित्रस्थ अथवा बुद्धिस्थचितिच्छाया ही 'अस्मिता' है।[52] चित्त, स्थूल, सूक्ष्म व सूक्ष्मतम समस्त ज्ञान को स्वप्रतिबिम्बित पुरुष (चितिशक्ति) को अर्पित कर देता है तथा प्रतिबिम्बित पुरुष (चितिशक्ति) सभी अनुभवों को आत्मसात् कर स्वत्व स्थापित कर लेता है। प्रतिबिम्बित पुरुष द्वारा स्वसत्ता का अनुभव 'अस्मि' रूप से करना ही 'अस्मिता' है।[53] सम्प्रज्ञातसमाधि में एकात्मिकता (चित्त व पुरुष) का अनुभव ही अस्मिता है।[54] अतएव योगी का ध्येय 'अस्मिता' होने पर 'अस्मितानुगतयोग' की स्थिति में 'पुरुषतत्त्व' एवं 'प्रकृति के शुद्ध सत्त्वरूप' का ज्ञान होने पर प्रमाता, प्रमेय और प्रमा का भेद समाप्त हो जाता है। योगी की अस्मिता (प्रकृति का शुद्ध सात्विक स्वरूप) ही 'प्रमाता' है, ऐसा अनुभव होता है।[55]

2. असम्प्रज्ञात-योग: चित्त की सभी वृत्तियों (सात्त्विक-राजसिक-तामसिक) का निरोध होने पर असम्प्रज्ञातसमाधि होती है।[57] असम्प्रज्ञात की अवस्था में चित्त, सम्प्रज्ञात-योग से प्राप्त विवेक-ज्ञान का भी परवैराग्य से निरुद्ध करता है।[58] अतएव चित्त को निरुद्ध-अवस्था में निरोधजन्य संस्कारमात्रविशिष्ट निर्बीजसमाधि प्राप्त होती है।[59] इस अवस्था में चित्त को किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं होता है, इसलिये यह असम्प्रज्ञातयोग कहा जाता है।60 इस प्रकार असम्प्रज्ञात-योग की अवस्था में प्रमाता, प्रमेय व प्रमिति की स्थिति न रहने पर ज्ञान-प्रक्रिया के बीजभूत चित्त का स्वकारण प्रकृति में लय हो जाने पर, पुरुष अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसलिये वह शुद्ध और मुक्त कहा जाता है।[61] त्रिगुणात्मक प्रकृति का स्वकारण अव्यक्तप्रकृति में लय हो जाना कैवल्य है तथा चितिशक्ति (पुरुष) का अपने रूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही कैवल्य है।[62]

क्रियायोग[64]

'क्रियायोग' एक पारिभाषिक शब्द है। क्रियायोग, चंचल चित्तवाले साधक अर्थात् मध्यम-अधिकारी के लिये बताया गया है।[65] तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर-प्रणिधान क्रियायोग है। इन तीनों क्रियाओं को 'योग' इसलिये कहा गया है, क्योंकि इनके करने से योग सिद्ध होता है। इस प्रकार साधन और साध्य के अभेद कथन होने के कारण इन क्रियाओं का नाम 'क्रियायोग' पड़ा है।[66] रजस्तमोमयी अशुद्धि को क्षीण करने हेतु तप का ग्रहण किया गया है।[67] द्वन्द्वों (सर्दी-गर्मी, भूख-प्यासादि) को सहन करना 'तप' है।[68] तपस्या का पालन साधक को चित्त की प्रसन्नता को बाधित न करने वाली स्थिति तक करना चाहिये।[69] प्रणवादि पवित्र-मन्त्रों का जप अथवा मोक्षपरक शास्त्रों का अध्ययन 'स्वाध्याय' है।[70] सम्पूर्ण क्रियाओं को परमगुरु ईश्वर में समर्पित करना अथवा कर्मों के फलों का संन्यास 'ईश्वर-प्रणिधान' है।[71]

क्रियायोग का पूर्णतया पालन करने पर सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है और अविद्यादि क्लेश क्षीणता को प्राप्त होते हैं।[72] क्रियायोग का निरन्तर पालन करने पर सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात योग सिद्ध होता है। 'अग्निपुराण' व 'पद्मपुराण' में 'क्रियायोग' को मोक्ष के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है।

अष्टाङ्ग-योग[73]

पतंजलि प्रदत्त अष्टाङ्ग-योग प्राम्भिक साधक के लिये बताया गया है। अष्टाङ्ग-योग सामान्य साधक के लिये मानवीय गुणों के विकास, समग्र स्वास्थ्य एवं समाधि द्वारा चेतना के उच्चतम स्तर की प्राप्ति का हेतु (सोपान) है। अष्टाङ्ग योग के प्रथम दो अङ्ग यम[74] (अहिंसा-सत्य-अस्तेय -ब्रह्मचर्य -अपरिग्रह) एवं नियम[75] (शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वर-प्रणिधान) का पालन करने से प्रत्येक व्यक्ति में निहित उच्चत्तम मानवीय मूल्यों का विकास होता है। उच्चत्तम मानवीय मूल्यों से युक्त व्यक्ति की आज प्रत्येक समाज को आवश्यकता है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति सदैव समाज एवं देश को सही मार्ग एवं दिशा प्रदान करने का प्रयास करता है। आसन[76] एवं प्राणायाम[77] (तृतीय एवं चतुर्थ अङ्ग) के पालन से समग्र स्वास्थ्य का लाभ होता है। आसन करने से शरीर के अवयव-संस्थान सुदृढ़ होते हैं एवं प्राणायाम करने से श्वसन-प्रक्रिया के सुचारु रहने से शरीर में जीवनी-शक्ति का विकास होता है व मनुष्य श्वसन-सम्बन्धी रोगों से मुक्त रहता है। शारीरिक रूप से सुदृढ़ एवं स्वस्थ व्यक्ति ही समाज एवं विश्व की उन्नति के लिये कार्य

कर सकता है। आयुर्वेद में भी कहा है- शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् - सम्पूर्ण कार्यों को करने का साधन शरीर है। पंचम अङ्ग प्रत्याहार[78] (इन्द्रियों के नियन्त्रण) से मनुष्य अपनी ऊर्जा को केन्द्रित कर स्व एवं मानव कल्याण के लिये उपयोग कर सकता है। प्रत्याहार, योग के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकृत है। यथार्थ रूप में पतंजलि ने यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार को योग के बहिरंग साधन के रूप में स्वीकार किया है एवं धारणा[79] -ध्यान[80] -समाधि[81] को ही योग की संज्ञा दी है जिसे शास्त्रीय परिभाषा में संयम (त्रयमेकत्र संयमः। योगसूत्र- 3/4) शब्द कहा गया है।

योग अर्थात् धारणा-ध्यान-समाधि का सम्बन्ध मन (Mind) से है। धारणा-ध्यान-समाधि करने से मन एवं बुद्धि का विकास होता है तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा (ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा। योगसूत्र- 1/48) उत्पन्न होती है। योग के द्वारा उत्पन्न ऋतम्भरा प्रज्ञा (पूर्ण सत्य को जानने वाली बुद्धि) के माध्यम से ही ब्रह्माण्ड के मूल कारण प्रकृति एवं पुरुष के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान सम्भव है। योग के अङ्गों का अनुष्ठान करने से, अशुद्धि का क्षय हो जाने पर विवेकख्याति के उदय तक ज्ञान का प्रकाश होता है।[82] इस प्रकार पतंजलि प्रदत्त अष्टाङ्ग-योग का श्रद्धा के साथ निरन्तर पालन करता हुआ योगी, चित्तवृत्ति-निरोध के द्वारा एकाग्र चित्त वाला होकर संप्रज्ञात व असंप्रज्ञात-योग को प्राप्त करता है।

भक्ति-योग (ईश्वरप्रणिधानाद्वा)[83]

भक्ति-योग हेतु पतंजलि द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। क्लेश, कर्म, विपाक (कर्मफल) एवं आशय (कर्मफलभोग) से अपरामृष्ट 'पुरुषविशेष' ईश्वर है।[84] 'विशिष्यत इति विशेषः'[85] इस व्युत्पत्ति के अनुसार सामान्य पुरुष से विलक्षण होने के कारण ईश्वर को 'पुरुषविशेष' कहा गया है, क्योंकि 'ईश्वर' जन्म-मृत्यु के चक्र से परे होता है। योग-दर्शन में 'ईश्वर' को 'प्रणव' शब्द से कहा गया है।[86] कर्मफल की अपेक्षा से रहित होकर परमगुरु 'ईश्वर' के प्रति सभी कर्मों का समर्पण करना 'ईश्वर-प्रणिधान' है।[87] 'ईश्वर-प्रणिधान' से समाधि की सिद्धि प्राप्त होती है।[88] प्रणिधान अर्थात् भक्ति-विशेष से प्रसन्न किया गया ईश्वर योगी को संकल्पमात्र से अनुगृहीत करता है।[89] उस ईश्वर के अभिध्यान-मात्र से योगी को शीघ्रता से समाधि-लाभ (असम्प्रज्ञात-समाधि) एवं समाधि-फल (असम्प्रज्ञात-योग) प्राप्त होता है।[90]

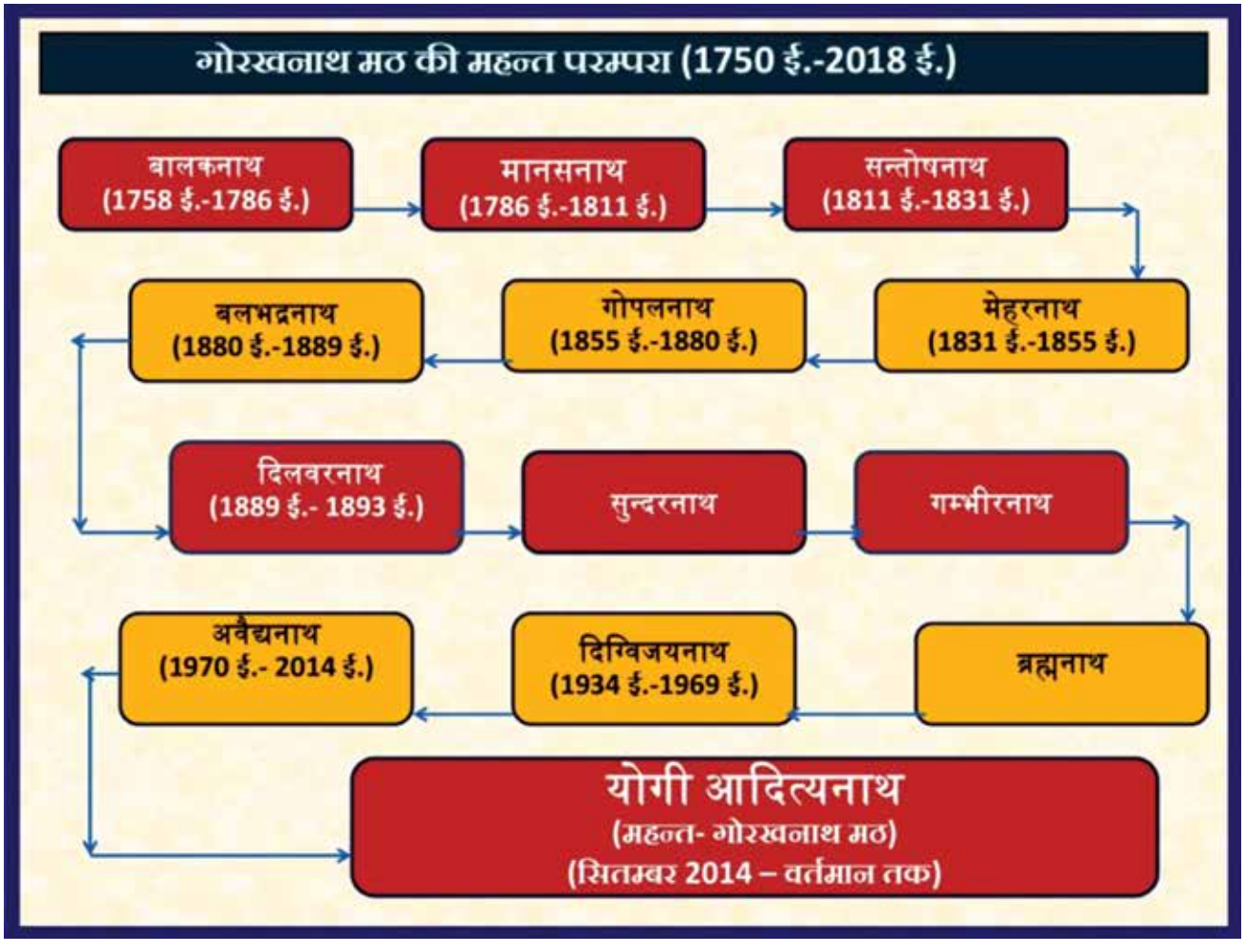

नाथ-योग[91]

भारत की योग परम्परा को जीवन्त बनाये रखने में "नाथ-योग सम्प्रदाय" का प्रमुख योगदान है। योग साधना के सिद्धान्तों को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु योगी गुरु गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) द्वारा एक 'योगी-सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया गया जो कि "नाथ-योग-सम्प्रदाय" के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त है। गुरु 'गोरखनाथ' योगी 'मत्स्येन्द्रनाथ' के शिष्य तथा 'आदिनाथ' के प्रशिष्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। अति प्राचीन काल से ही गुरु गोरखनाथजी सामान्य धार्मिक मानस में शिव के प्रतिनिधि या शिवरूप समझकर पूजे जाते रहे हैं। इसलिये उनका एक नाम "शिव" भी हैं। नाथयोगी सम्प्रदाय के विकास के इतिहास तथा अन्य लिखित परम्पराओं

के साक्ष्य के आधार पर योगी गोरखनाथ का समय 5वीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी के मध्य निश्चित किया जा सकता है।

नाथ-योगियों के मन्दिरों और मठों में गोरखपुर स्थित गोरखनाथ-मन्दिर का विशिष्ट स्थान है। परम्परा के अनुसार गुरु गोरखनाथ ने इस विशिष्ट भूमि को अपनी साधना का केन्द्र बनाया। यह मठ सहस्रवर्षों से स्थित है और इसने सहस्रों युवाओं को आध्यात्मिकता के पथ की ओर अग्रसर किया। इस मठ का प्रबन्ध एक योगी के हाथ में रहता है, जिसे "महन्त" कहते हैं। वह योगी गुरु 'गोरखनाथ' का 'प्रतिनिधि' और इस संगठन से सम्बद्ध सभी योगियों का 'आध्यात्मिक-गुरु' माना जाता है। गुरु गोरखनाथ मन्दिर की महन्त-परम्परा, गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा समर्पण का एक जीवन्त उदाहरण है। गोरखपुर स्थित 'गोरखनाथ' मन्दिर इस दृष्टि से भी विशिष्ट है, क्योंकि इसके महन्तों की परम्परा में कुछ ऐसे महान् योगी हुए जो अपने आध्यात्मिक ज्ञान एवं अद्वितीय योग-शक्ति के कारण दूर-दूर तक विख्यात रहे हैं। गुरु बुद्धनाथ, वीरनाथ, अजबनाथ और पियारनाथ इस मठ के महन्त रह चुके हैं। अलौकिक जीवन के धनी गुरु बालकनाथ (1758-1786) 28 वर्षों तक महन्त रहे हैं। इस प्रकार 17वीं शताब्दी से आजतक इस मठ में प्रख्यात योगियों की एक लम्बी परम्परा प्राप्त होती है।

गुरु गोरखनाथजी का योगी सम्प्रदाय 12 उपपंथों में विभाजित है। इसीलिये इन्हें 'बारहो पन्थी' कहते हैं। इनमें से प्रत्येक सम्प्रदाय गोरखनाथजी के निकटतम शिष्य अथवा अनुयायी द्वारा प्रवर्तित है। सम्प्रदाय के उपपंथ इस प्रकार हैं -

(1) सतनाथी (2) रामनाथी (3) धर्मनाथी (4) लक्ष्मननाथी (5) दरियानाथी (6) गंगानाथी (7) बैरागपंथी (8) रावलपंथी या नागनाथी (9) जालन्धरनाथी (10) ओपन्थी (11) कापलती या कपिलपंथी (12) षज्जानाथी या महावीरपंथी। उपरोक्त इन विभिन्न पंथियों का भारतवर्ष में अपना प्रमुख केन्द्र हैं तथा ये सभी देशव्यापी एक संगठन से सम्बद्ध हैं।

नाथ-पंथी योगियों द्वारा रचित विस्तृत योग-साहित्य प्राप्त होता है जिसमें से 'गोरक्ष-शतक', 'गोरक्ष-संहिता', 'सिद्धान्त-पद्धति, 'योग-सिद्धान्त-पद्धति', 'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति, 'हठयोग', 'ज्ञानामृत' आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थ स्वयं गोरक्षनाथजी द्वारा रचित हैं। इसी सम्प्रदाय के योगियों द्वारा रचित 'हठयोगप्रदीपिका', 'शिव-संहिता' और 'घेरण्ड-संहिता' आदि योग-साधना से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार 'गोरक्ष-गीता', 'गोरक्ष-कौमुदी', 'गोरक्षसहस्रनाम', 'योग-संग्रह', 'योगमञ्जरी', 'योग-मार्त्तण्ड' आदि ग्रन्थ गोरखनाथजी के शिक्षा-सिद्धान्तों पर आधारित हैं।

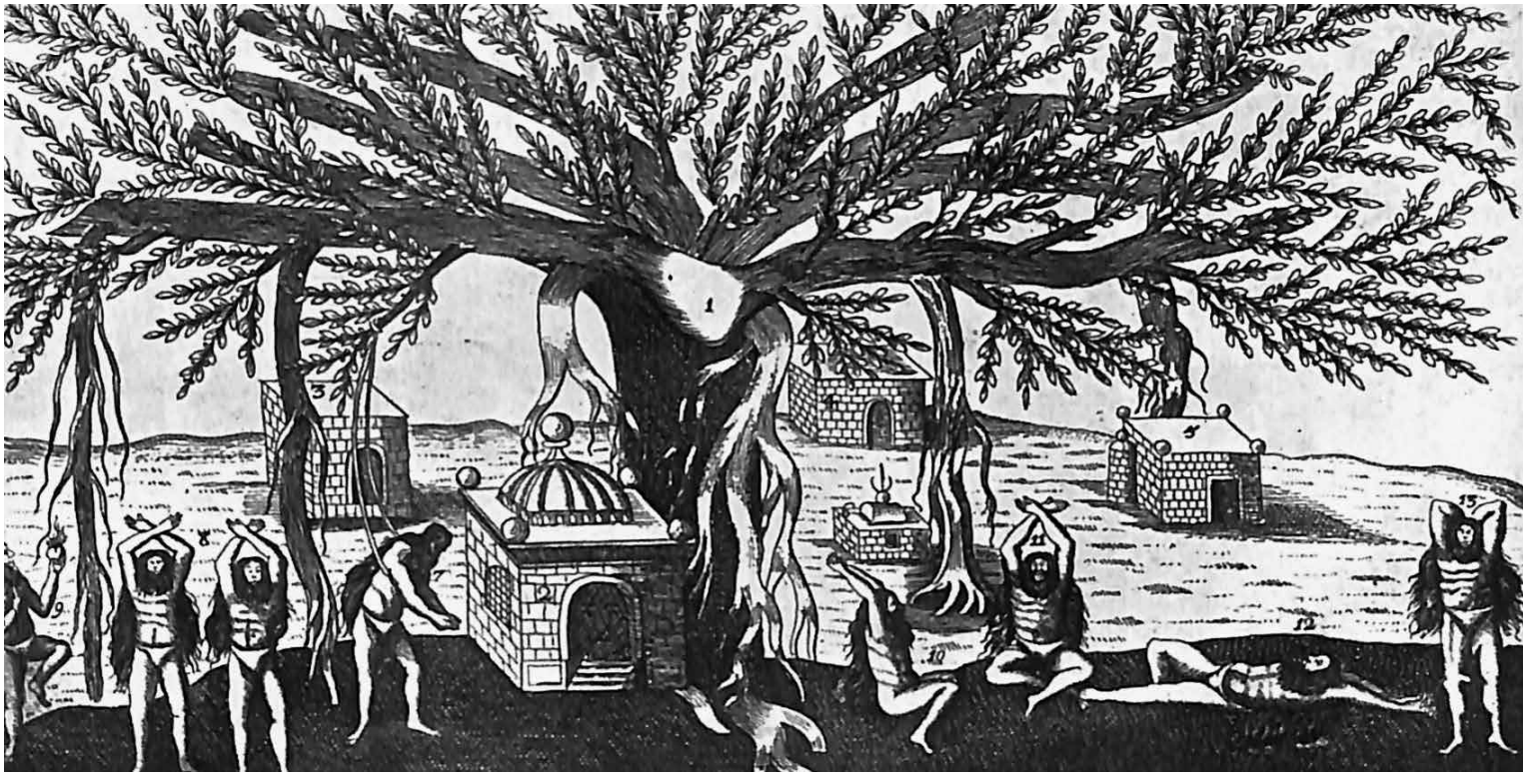

गोरखनाथजी द्वारा प्रवर्तित योगी-सम्प्रदाय सामान्यतः 'नाथ-योगी', 'सिद्ध-योगी', 'अवधूत-योगी', 'दरसनी-योगी' या 'कनफटा-योगी' के नाम से प्रसिद्ध है। ये सभी नाम साभिप्राय हैं। योगी का लक्ष्य नाथ अर्थात् स्वामी होना है। प्रकृति के ऊपर पूर्ण स्वामित्व स्थापित करने के लिये योगी को अनिवार्यतः नैतिक, शारीरिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक नियमों की क्रमिक विधि का पालन करना पड़ता है। "सिद्ध-योगी" से तात्पर्य यह है कि जो योगी भौतिक-जगत् के स्थूल, सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतम तत्त्वों पर तथा स्थूल व सूक्ष्म शरीर के नियन्त्रण द्वारा "सिद्धि" अथवा "आत्मोपलब्धि" प्राप्त करता है। जो योगी आत्मानुभूति की उच्चतम स्थिति को प्राप्त कर लेता है, वह 'अवधूत' कहलाता है। अवधूत योगी प्रकृति की शक्तियों एवं नियमों से परे होने के कारण भौतिक जगत् के दुःखों और बन्धनों से मुक्त होकर शिव के साथ एकत्व को प्राप्त कर लेता है।

इस सम्प्रदाय के योगी कुछ निश्चित प्रतीकों का प्रयोग आध्यात्मिक अर्थ के अभिप्राय से करते हैं। नाथ-योगी का एक प्रकट चिह्न कानों में पहने हुए कुण्डल हैं। इस सम्प्रदाय का

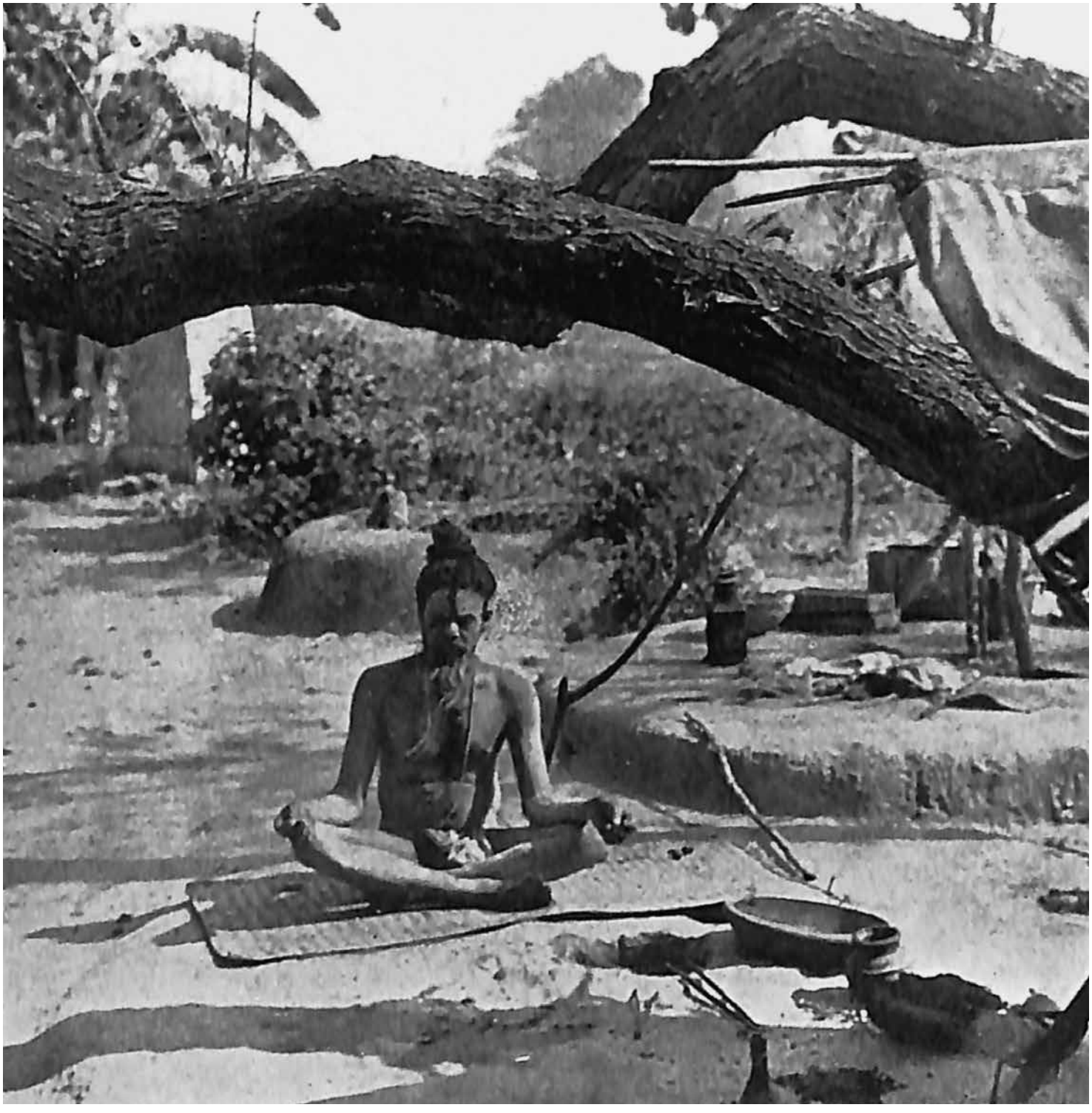

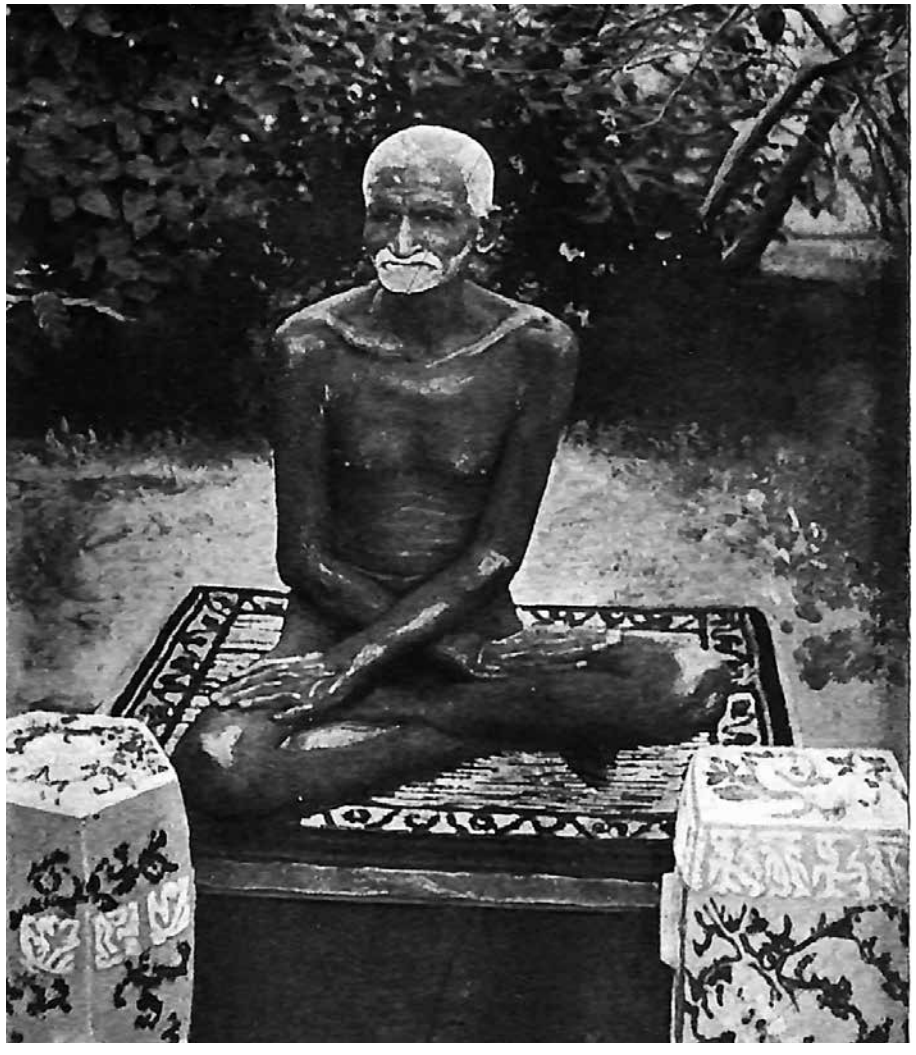

प्रत्येक व्यक्ति संस्कार की तीन स्थितियों का अनुभव करता है। तीसरी अथवा अन्तिम स्थिति में गुरु शिष्य के दोनों कानों के मध्यवर्ती कोमल भागों को फाड़ देता है और घाव भरने पर उनमें दो बड़े छल्ले पहना दिये जाते हैं। अतएव इस सम्प्रदाय के योगी को कनफटा योगी कहा जाता है। योगी के द्वारा पहना जाने वाला 'मुद्रा', 'दरसन', 'कुण्डल' आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। यह गुरु के प्रति शिष्य के पूर्ण आत्मसमर्पण का प्रतीक है।

'औघड़ योगी' गोरखनाथजी के उन अनुयायियों को कहा जाता है जो सभी सांसारिक सम्बन्धों का परित्याग कर योग-सम्प्रदाय में प्रविष्ट हो गये हैं परन्तु अन्तिम दीक्षा-संस्कार

के रूप में कान नहीं फड़वाया है। "दरशनी योगी" वे हैं जिन्होंने सांसारिक जीवन का पूर्णतः परित्याग कर लक्ष्य-सिद्धि प्राप्ति तक योग-साधना के मार्ग से विरत न होने का दृढ़ व्रत लिया है। "औघड़" तथा "दरशनी" योगी ऊन का पवित्र उपवीत (जनेऊ) पहनते हैं। इसी में एक छल्ला जिसे 'पवित्री' कहते हैं, लगा रहता है। छल्ले में एक नादी लगी रहती है जो 'नाद' कहलाती है और इसी के साथ रुद्राक्ष की मनियाँ भी रहती हैं। 'नाद' प्रणव (ऊँ) की अनाहत ध्वनि तथा 'रुद्राक्ष' तत्त्वदर्शन का प्रतीक है।

इस प्रकार 'अवधूत' ही सच्चे अर्थों में नाथ, सिद्ध या दर्शनी है। अवधूत (गुरु) की पूर्ण मुक्त आत्मा के साथ एकत्व स्थापित करके कनफटा योगी की आत्मा अहंकारमयी प्रवृत्तियों और इच्छाओं के बन्धन से मुक्ति को प्राप्त हो जाती है । वह भी साधना के उच्चतम भूमि तक पहुँचकर शिवत्व को प्राप्त हो जाता है।

गुरु गोरखनाथ तथा उनकी परम्परा के महायोगी किसी निश्चित दार्शनिक सिद्धान्त की स्थापना किसी शुष्क तर्क के आधार पर न करके पूर्णतः व्यावहारिकता तथा साधना के अनुभवों के आधार पर करते हैं। सिद्ध योगी सम्प्रदाय का सबसे अधिक प्रामाणिक दार्शनिक ग्रन्थ "सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति" है। योग-सिद्धान्त के अनुसार विश्व, शक्ति-तत्त्व की भेदात्मक आत्म-अभिव्यक्ति है। शक्तितत्त्व शिव या ब्रह्म से शाश्वत रूप से सम्बद्ध तथा अभिन्न है - "शिवस्य अभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।" शिव और शक्ति एक दूसरे में अन्तरस्थ है। परमतत्त्व 'सत्ता' रूप में द्वैतात्मक और सापेक्षिक स्थिति से ऊपर तथा स्थान और समय की सीमाओं से परे 'शिव' है और स्वरूपात्मक स्थिति में इस द्वैतात्मक सापेक्षिक जगत् में समय और स्थान की सीमाओं में बँधकर अभिव्यक्त रूप में 'शक्ति' है।

योगी गोरखनाथजी के दर्शन की यह विशेषता है कि वह न केवल व्यक्ति की आत्मा को विश्वात्मा से अभिन्न मानते हैं, वरन् "व्यष्टिपिण्ड" को भी समस्त ब्रह्माण्ड से अभिन्न मानते हैं। उनके मत के अनुसार 'पिण्ड' ब्रह्माण्ड का ही वैयक्तिक मूर्तरूप है। व्यक्ति के पिण्ड के रहस्यों के पूर्ण ज्ञान एवं उस पर पूर्ण आधिपत्य द्वारा सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जब व्यक्ति के 'आत्मा' और 'विश्वात्मा' तथा 'व्यष्टिपिण्ड' और 'ब्रह्माण्ड' (समष्टिपिण्ड) का अज्ञानजन्य भेद समाप्त हो जाता है और एक ही शक्तियुक्त शिव भीतर और बाहर सर्वत्र अनुभूत होता है, तभी 'समर सकरण' की स्थिति आती है। इस स्थिति को प्राप्त करना ही योगी के जीवन का आदर्श एवं लक्ष्य है। गोरखनाथजी तथा उनके सम्प्रदाय की दार्शनिक पद्धति को "द्वैताद्वैतविवर्जित" तथा "पक्षापक्षविनिर्मुक्त" कहते हैं।

स्वयं की रक्ष
धर्म की रक्षा
स्वयं की मर्याद
धर्म की मर्यादा

नाथयोग द्वारा साधना-पद्धति में पातंजल-योग का अनुसरण किया गया है। नाथ-योग द्वारा 'षडङ्ग-योग' को स्वीकार किया गया है तथा पातंजल-योग प्रदत्त 'अष्टांग-योग' के 'यम' एवं 'नियम' को 'षडंग-योग' में समाहित नहीं किया गया, क्योंकि 'यम' एवं 'नियम' का सम्बन्ध विश्वजनीन नैतिकता से है तथा प्रत्येक मनुष्य को जीवन में नैतिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिये, ऐसा नाथ-सम्प्रदाय का मत है।

नाथ-सम्प्रदाय के द्वारा प्रारम्भिक योग-साधना के रूप में 'यम' एवं 'नियम' को महत्त्व देते हैं। पतंजलि द्वारा निर्धारित पाँच 'यम' और पाँच 'नियम' के भेदों के स्थान पर 10 'यम' (अहिंसा सत्यम् अस्तेयम् ब्रह्मचर्यम् क्षमा धृतिः। दयार्जवं मिताहारं शौचं चैव यमो दश।।) तथा 10 'नियम' (तपः सन्तोषं आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्। सिद्धान्त-वाक्य-श्रवणं ह्री मतिश्च जपो हुतम्।। नियमा दश संप्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः।।) का प्रतिपादन करते हैं जिनका क्रमशः अभ्यास प्रत्येक योग-साधना के जिज्ञासु के लिये आवश्यक है।

गोरख सम्प्रदाय हठयोग साधना में प्रवीण है। हठयोग का अर्थ है 'हठेन बलात्कारेण योगसिद्धिः' अर्थात् बलपूर्वक व कठिन अभ्यास से योग-साधना में सिद्धि लाभ करना। हठयोग के ग्रन्थों में 48000 आसनों का उल्लेख है। योग-साधना की दृष्टि से चार प्रकार के आसनों - सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन- को उत्तम माना गया है। इन चारों में से सर्वोत्तम "सिद्धासन" है, क्योंकि यह 72000 नाड़ियों को शुद्ध करता है एवं मुक्ति का मार्ग प्रदान करता है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गोरखनाथजी तथा उनके अनुयायियों ने हठयोग की साधना को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया तथा उन विविध शारीरिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं का विस्तृत वर्णन किया जिनके अभ्यास से शारीरिक अवयवों, नाड़ी, मण्डल, इन्द्रियों तथा मन पर पूर्ण संयम स्थापित किया जा सके। इस योगी-सम्प्रदाय से सम्बद्ध अनेक उपलब्ध ग्रन्थों में मुख्यतः 'आसन', 'प्राणायाम', 'धौति', 'मुद्रा', 'चक्रभेद' व नाड़ीशुद्धि आदि की कठिन प्रक्रियाओं का तथा उनके महत्त्वपूर्ण परिणामों का उल्लेख प्राप्त होता है। नाथ-सम्प्रदाय द्वारा 'हठयोग' को साध्य न मानकर केवल 'साधन' के रूप में स्वीकार किया गया है तथा उन्होंने अपनी यौगिक प्रणाली में कर्म, शक्ति एवं ज्ञान के समन्वय की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए इस लक्ष्य पर अधिक बल दिया है कि योगाभ्यास की सम्पूर्ण का साध्य सभी प्रकार की दुर्बलताओं, दुःखों और बन्धनों से मुक्त होकर "शक्तियुक्त शिव" के साथ एकत्व स्थापित करना है जिसके परिणामस्वरूप योगी की चेतना नानात्व और सापेक्षकत्व के क्षेत्र, समय तथा स्थान के आवरण एवं शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि की

सीमाओं का अतिक्रमण करके परमतत्त्व शिव, ब्रह्म या परमात्मा से आनन्दपूर्वक मिलकर पूर्णतः प्रकाशित हो जाती है। यही नाथ-योग-सम्प्रदाय के प्रत्येक योगी का साध्य है।

वर्तमान में भारतीय योग-परम्परा व सनातन धर्म, जिसके मूल में वैदिक धर्म है, को अक्षुण्ण बनाये रखने में नाथ-योग-सम्प्रदाय का प्रमुख योगदान है। अतएव नाथ-योग-सम्प्रदाय भारतभूमि का गौरव है जिसके प्रति भारत का प्रत्येक नागरिक नतमस्तक है।

उपसंहार

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वर्तमान में व्याप्त समस्याओं के समाधान हेतु योग का पालन व अध्ययन-अध्यापन अत्यन्त आवश्यक है। योग के माध्यम से ही चेतना को समझा जा सकता है। प्राचीन काल से प्राप्त, भारतीय संस्कृति की धरोहर योग-विद्या की महत्ता को अब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार कर लिया गया है। 11 दिसंबर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा के 193 सदस्यों ने रिकॉर्ड 177 सह-समर्थक देशों के साथ 21 जून को "अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस" मनाने का संकल्प सर्वसम्मति से अनुमोदित किया। अपने संकल्प में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने स्वीकार किया कि योग स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिए पूर्णतावादी दृष्टिकोण प्रदान करता है। योग विश्व की जनसंख्या के स्वास्थ्य के लिए तथा उनके लाभ के लिए विस्तृत रूप में कार्य करेगा। 27 सितंबर, 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा (यू एन जी ए) के 69वें सत्र को संबोधित करते हुए भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने विश्व समुदाय से अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का आह्वान किया।

श्री मोदी ने कहा, ''योग प्राचीन भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की अमूल्य देन है। योग अभ्यास शरीर एवं मन, विचार एवं कर्म, आत्मसंयम एवं पूर्णता की एकात्मकता तथा मानव एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। यह स्वास्थ्य एवं कल्याण का पूर्णतावादी दृष्टिकोण है। योग मात्र व्यायाम नहीं है, बल्कि स्वयं के साथ, विश्व और प्रकृति के साथ एकत्व खोजने का भाव है। योग हमारी जीवन-शैली में परिवर्तन लाकर हमारे अन्दर जागरुकता उत्पन्न करता है तथा प्राकृतिक परिवर्तनों से शरीर में होने वाले बदलावों को सहन करने में सहायक हो सकता है। आइए, हम सब मिलकर योग को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में स्वीकार करने की दिशा में कार्य करें।"

वर्तमान में माननीय प्रधानमन्त्रीजी श्री नरेन्द्र मोदीजी के विशेष प्रयासों से योग से सम्पूर्ण विश्व परिचित हो गया है परन्तु योग-परम्परा के अधिकांशतः ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में लिखे

होने के कारण सामान्यजन इसमें निहित वैज्ञानिक तथ्यों एवं नूतन शोध की सम्भावनाओं से सर्वथा अपरिचित है। अतएव इस दिशा में चिन्तन की नितान्त आवश्यकता है, जो कि संस्कृत शास्त्रों के गहन अध्ययन से ही सम्भव है।

वर्तमान काल में विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ भौतिक सुविधाओं के बढ़ने एवं उसके अधिक उपयोग से पर्यावरण एवं मानव जीवन असुरक्षित हो गया है। बाह्य पर्यावरण के दूषित होने एवं कृत्रिम जीवन-यापन से मनुष्य की रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम होने से नयी-नयी बीमारियों ने अपने पाँव पसारने शुरू कर दिये हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान निरन्तर इन बीमारियों को उद्घाटित तो कर रहा है परन्तु इनका इलाज अभी भी नहीं खोजा जा सका है। वस्तुतः आज एक ऐसी समन्वित चिकित्सा-पद्धति की आवश्यकता है जिससे व्यक्ति को रोगी बनने से रोका जा सके। अतएव योग-चिकित्सा-विज्ञान को अन्य चिकित्सा विधाओं के साथ जोड़कर एक समन्वित चिकित्सा-पद्धति के पाठ्यक्रम एवं गहन शोध की आवश्यकता है। योगसूत्र में विशेष रूप से मन का विश्लेषण किया गया है। आज के आधुनिक मनोवैज्ञानिक भी मस्तिष्क की संरचना को समझने का प्रयास कर रहे है, क्योंकि मानसिक रोगों के निदान हेतु मन का पूर्णतया अध्ययन आवश्यक है परन्तु उनका सम्पूर्ण अध्ययन पाश्चात्य विद्वानों के मतों पर आश्रित है। अतएव योग एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में समन्वित शोध की आवश्यकता है। योग एवं मनोविज्ञान के समन्वित शोध से ब्रेन-मैपिंग जैसी आधुनिकी तकनीकी का विकास सम्भव है तथा मानसिक-सन्तुलन, मस्तिष्क की स्मृति और भविष्य-कल्पना जैसे गम्भीर विषयों पर भी शोधकार्य सम्भव है। मनोविज्ञान के क्षेत्र (Cognitive Science) के शोध-क्षेत्र में भी योग का समन्वय अत्यन्त आवश्यक है। इसी प्रकार योग का उद्देश्य मन के नियन्त्रण के द्वारा स्व-चेतना के स्तर को प्राप्त करना है जिसे योग में चितिशक्ति कहा गया है। पाश्चात्य-चिकित्सा-विज्ञान की शाखा तन्त्रिका-विज्ञान (Neuroscience) के शोध का कार्य-क्षेत्र मानव-शरीर व चेतना है। आज भी तन्त्रिका-वैज्ञानिकों (Neuroscientist) के लिये यह एक पहेली है कि किस तरह से शारीरिक-क्रिया से चेतना (Consciousness) उत्पन्न हो जाती है ? क्या शरीर व चेतना दो भिन्न चीजें है अथवा एक? योग एवं तन्त्रिका-विज्ञान के समन्वित शोध से इन सभी प्रश्नों के हल से तन्त्रिका-विज्ञान के क्षेत्र में नूतन शोध-कार्य सम्भव है जो मानव एवं प्राणि-वर्ग के लिये कल्याणकारी होगा। योगसूत्रव्यासभाष्य में भाषा-सम्बन्धी चिन्तन का पूर्ण विश्लेषण प्राप्त होता है, जिसके अध्ययन से भाषा-वैज्ञानिकों को निश्चित रूप से एक

नूतन शोध-दृष्टि प्राप्त होगी एवं (Speech Therapy) में भी आशातीत सफलता प्राप्त होगी। योगसूत्रव्यासभाष्य एवं योग के अन्यान्य ग्रन्थों में सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी सम्पूर्ण प्रक्रिया का पूर्ण विश्लेषण प्राप्त होता है। अतएव इसके अध्ययन से भौतिक-वैज्ञानिकों (Physicist) एवं ब्रह्माण्ड-विज्ञान (Cosmology) के क्षेत्र में कार्य करने वालों को इस सृष्टि के मूल कारण को जानने में सहायता प्राप्त होगी जिससे वर्तमान विज्ञान-जगत् के अन्य सभी क्षेत्रों में शोध के नये मार्ग खुलेंगे।

इस प्रकार हमें पाश्चात्य-ज्ञान की एकाकी दृष्टि का परित्याग करते हुए योग, जो प्राचीन ऋषियों की देन है, का स्वतन्त्र रूप से एवं अध्ययन की अन्यान्य शाखाओं के साथ जोड़कर शोध एवं अध्ययन आवश्यक है। पतंजलि प्रदत्त अष्टाङ्ग-योग का पालन करने वाला प्रत्येक मनुष्य- चाहे वह किसी धर्म अथवा जाति का हो- उच्च मानवीय मूल्यों, समग्र स्वास्थ्य एवं उच्चतम- प्रज्ञा से युक्त होकर स्व-विकास एवं सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु कार्य करेगा। अतएव योग को किसी धर्म, जाति, देश की सीमाओं में संकुचित न करके हमारी इस वसुधा पर उत्पन्न उच्चतर प्रज्ञा से युक्त ऋषियों द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति के लिये प्रदत्त एक अत्यन्त उपयोगी वैज्ञानिकी विधा के रूप में ग्रहण करना चाहिये, जो कि इस सम्पूर्ण विश्व के उपयोग के लिये है।

सन्दर्भ सूची

1. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। योगसूत्र 1/2
2. योगः समाधिः स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः। योगसूत्रव्यासभाष्य 1/1
   संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोश्चेति। योगियाज्ञवल्क्य
3. हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः। महाभारत 12/349/65
4. इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवान् जगाद् यत्। श्रीमद्भागवत 3/19/13
5. इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
   विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ श्रीमद्भगवद्गीता - 4/1
6. एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
   स कालेनेह महता योगो नजृः पतन्तप॥ श्रीमद्भगवद्गीता - 4/2
7. स एवायं मया तेऽद्य योग प्रोक्तः पुरातनः।
   भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ श्रीमद्भगवद्गीता - 4/3

8. यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।।
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।। - कठोपनिषद् - 2/3/10-11
9. लययोगश्चित्तलयः कोटिशः परिकीर्तितः।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुंजन्ध्यायेन्निष्कलमीश्वरम्।।
स एव लययोगः। योगतत्त्वोपनिषद् - 23, 24 ।।
10. यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।। कठोपनिषद् - 1/3/13
11. सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्धये।
राजयोगसमारूढ़ः पुरुषः कालवञ्चकः।। हठयोगप्रदीपिका - 4/103
12. एतेषां लक्षणं ब्रह्मन्वक्ष्ये शृणु समासतः।
मातृकादियुतं मन्त्रं द्वादशाब्दं तु यो जपेत्।।
क्रमेण लभते ज्ञानामणिमादिगुणान्वितम्।
अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः।। योगतत्त्वोपनिषद्-21, 22
13. तस्य वाचकः प्रणवः तज्जपस्तदर्थभावनम्। योगसूत्र 1/27, 28
14. ज्ञानयोगेन सांख्यानाम्। श्रीमद्भगवद्गीता - 3/3
15. ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।। तदेव - 7/2
16. अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।। तदेव - 13/11
17. मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।। तदेव - 13/18
18. कर्मयोगेन योगिनाम्। - श्रीमद्भगवद्गीता - 3/3
19. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।। श्रीमद्भगवद्गीता - 3/19-20
20. अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् श्रीमद्भगवद्गीता - 12/11
21. ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।। श्रीमद्भगवद्गीता - 12/12

22. सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।। नारद-भक्तिसूत्र - 1/2
23. अमृतस्वरूपा च। तदेव - 1/3
24. यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति। तदेव - 1/4
25. मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।। श्रीमद्भगवद्गीता - 12/12
26. मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।। तदेव - 12/10
27. श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
28. ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।। - तदेव - 12/12
29. भाव्यं च द्विविधम् - ईश्वरस्तत्त्वानि च। स. द. सं. पृ. 587
30. तान्यपि द्विविधानि जडाजडभेदात्। वही
31. प्रकृतिमहदहंकारादीनि चतुर्विंशतिः। अजडः पुरुषः । वही
32. चित्तवृत्तिबोधे पुरुषस्यानादिः सम्बन्धो हेतुः। योगसूत्र-व्यासभाष्य- 1/4
33. न विशेषेभ्यः परं तत्त्वान्तरमस्ति, इति विशेषाणां नास्ति तत्त्वान्तरपरिणामः तेषां तु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्यायन्ते । योगसूत्र-व्यासभाष्य-2/19
34. तद्यथा-शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्रं चेत्येकद्वित्रिचतुष्पंचलक्षणाः शब्दादयः पंचविशेषा षष्ठाश्चाविशेषोऽस्मितामात्र इति। एते सत्तामात्रस्यात्मनो महतः षडविशेषपरिणामाः। तदेव
35. तत्राकाशवाय्वग्न्युदकभूमयो भूतानि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्राणामविशेषाणां विशेषाः। तथा श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानि बुद्धीन्द्रियाणि। वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि। एकादशं मन्त्रः सर्वार्थम्। इत्येतान्यस्मितालक्षणस्या विशेषस्य विशेषाः। तदेव
36. चित्तिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमा दर्शितविषया शुद्धा चानन्ता च। योगसूत्र-व्यासभाष्य- 1/2
37. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। योगसूत्र 1/24
38. क्लेशहेतुकाः कर्माशयप्रचय क्षेत्रीभूताः क्लिष्टाः। योगसूत्रव्यासभाष्य - 1/5
39. तस्मिन् समाहितचित्तस्य या प्रज्ञा जायते तस्या ऋतम्भरेति संज्ञा भवति। - योगसूत्रव्यासभाष्य - 1/48
40. यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति, क्षिणोति च क्लेशान्, कर्मबन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखं करोति, स सम्प्रज्ञातो योग इत्याख्यायते। योगसूत्र-व्यासभाष्य- 1/1
41. विशेषेण तर्कणमवधारणं वितर्कस्तेनानुगतो युक्तो निरोधो वितर्कानुगतनामा योग इति भावः। योगवार्तिक - 1/17
42. वितर्काश्चित्तस्यालम्बने स्थूल आभोगः। योगसूत्रव्यासभाष्य 1/17

43. सूक्ष्मो विचारः। योगसूत्र-व्यासभाष्य दृ 1/17
44. तस्य स्थूलस्य कारणं पञ्चतन्मात्रादिकं सूक्ष्मं तस्य ध्यानेन साक्षात्कारो विचारः। मणिप्रभा - 1/17
45. इन्द्रिये स्थूल आलम्बने चित्रस्याभोगो ह्लाद आनन्दः। तत्त्ववैशारदी - 1/17
46. सत्त्वं सुखमिति तान्यपि सुखानीति तस्मिन्नाभोगो ह्लाद इति। तदेव
47. तदानीं चानन्दगोचर एवाहं सुखीति चित्तवृत्तिर्भवति। तथा च गीता
48. सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
49. वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितिश्चलति तत्त्वतः।।
50. तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।। इति गीता 6/21, 23 - योगवार्तिक 1/17
51. दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिताम्। योगसूत्र - 2/6
52. सत्त्वपुरुषयोरहमस्मीत्येकताभिमानोऽस्मितेत्यर्थः। योगसुधाकर - 2/6
53. एकात्मिका संविदस्मिता। योगसूत्र - 1/17
54. अस्मितायां प्रमातृमात्रम्। पातंजल-रहस्य-1/17
55. सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसम्प्रज्ञातः समाधिः। योगसूत्र-व्यासभाष्य-1/1
56. (1) तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्णयम्। योगसूत्र - 1/16
    (2) सत्त्वगुणात्मिका चेयमतो विपरीता विवेकख्यातिरिति। अतस्तस्यां विरक्तं चित्तं तामपि ख्यातिं निरुणिद्ध। योगसूत्र-व्यासभाष्य 1/2
57. तदवस्थं चित्तं संस्कारोपगं भवति। स निर्बीजः समाधिः। योगसूत्र-व्यासभाष्य 1/2
58. न तत्र किंचित्सम्प्रज्ञायत इत्यसम्प्रज्ञातः। तदेव
59. (1) तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। योगसूत्र - 1/3
    (2) तस्मिन्निवृत्ते पुरुषः स्वरूपमात्रप्रतिष्ठितोऽतः शुद्ध केवलो मुक्त इत्युच्यत इति। योगसूत्रव्यासभाष्य-1/51
60. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति। योगसूत्र 4/34
61. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। योगसूत्र -2/1
62. व्युत्थानचित्तोऽपि योगयुक्तः स्यादित्येतदारभ्यते। योगसूत्र-व्यासभाष्य - 2/1
63. क्रिया एव योगः योगसाधनत्वात्, योगोपायत्वाद्योगः। योगवार्त्तिक-2/1
64. अनादिकर्मक्लेशवासनाचित्रा प्रत्युपस्थितविषयजाला चाशुद्धिर्नान्तरेण तपः सम्भेदमापद्यत इति तपस उपादानम्। योगसूत्र-व्यासभाष्य-2/1
65. तपो द्वन्द्वसहनम्। योगसूत्र-व्यासभाष्य-2/32
66. तच्च चित्तप्रसादनमबाधमानमनेनाऽऽसेव्यमिति। तदेव

67. स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा। तदेव
68. ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा। तदेव
69. समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च। योगसूत्र- 2/2
70. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयो ष्टावङानि। योगसूत्र - 2/29
71. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः। योगसूत्र - 2/30
72. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। योगसूत्र - 2/32
73. स्थिरसुखमासनम्। योगसूत्र - 2/46
74. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वास्योर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। योगसूत्र - 2/49
75. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। योगसूत्र - 2/54
76. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। योगसूत्र - 3/1
77. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। योगसूत्र - 3/2
78. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरुपशून्यमिव समाधिः। योगसूत्र - 3/3
79. धा योगाङ्गानुश्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। योगसूत्र - 2/28
80. योगसूत्र 1/23
81. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। योगसूत्र 1/24
82. तत्त्ववैशारदी - 1/24
83. तस्य वाचकः प्रणवः। योगसूत्र -1/27
84. ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्। योगसूत्र-व्यासभाष्य- 2/32
85. समाधिसिद्धीरीश्वरप्रणिधानात्। योगसूत्र - 2/45
86. प्रणिधानाद्वक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण। योगसूत्र-व्यासभाष्य-1/23
87. तदभिध्यानमात्रादपि योगिन आसन्नतमः समाधिलाभः समाधिफलं च भवतीति। तदेव
88. नाथ-योग, श्री अक्षय कुमार बनर्जी, अनुवादक-डा. रामचन्द्र तिवारी, दिग्विजयनाथ ट्रस्ट, गोरखनाथ मन्दिर, गोर्खपुर, संस्करण- 1968.

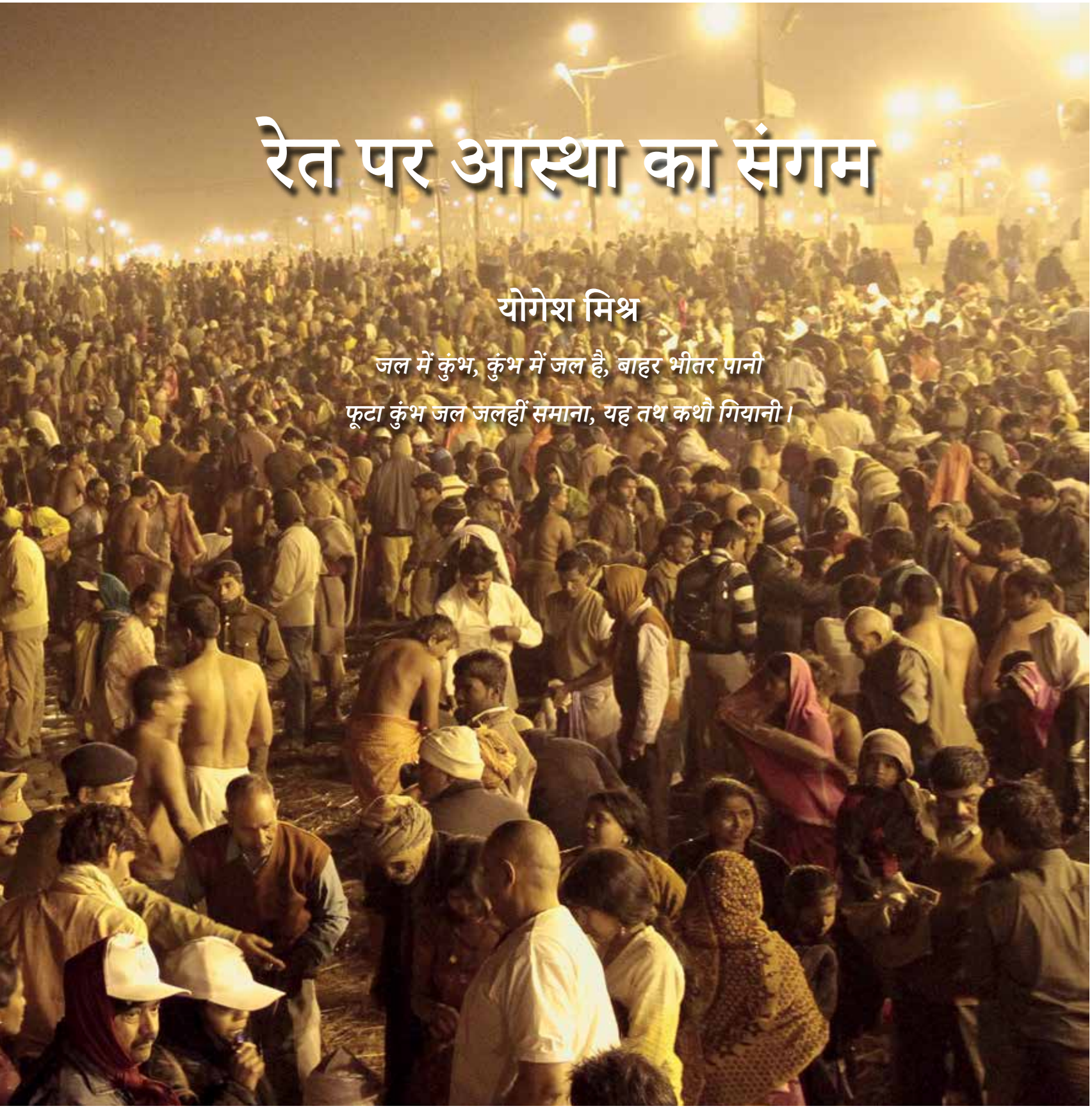

रेत पर आस्था का संगम

योगेश मिश्र

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी

फूटा कुंभ जल जलहीं समाना, यह तथ कथौ गियानी।

प्रयागराज में कुम्भ मेला का एक दृश्य

यही कुंभ का तत्व है। यही कुंभ का ज्ञान है। यही कुंभ का तात्विक ज्ञान है। यही विज्ञान है। कुंभ का विज्ञान है। जीवन का विज्ञान है। यही तत्व, ज्ञान, विज्ञान हमारी चेतना के द्वार खोलते हैं। रेत पर हिन्दुस्तान बसाते हैं। तम्बू के शहर में सेवा और शुद्धि को कायाकल्प की प्रक्रिया बनाते हैं। त्याग, तप, ज्ञान और संन्यास के लिए कुंभ की परम्परा प्रचलित हुई। इसीलिए एक ओर यह संतों, महंतों, नागाओं का उत्सव है तो दूसरी ओर हर भारतवासी के कायाकल्प की प्रक्रिया है। कुम्भ के आयोजनों में पेशवाई का महत्वपूर्ण स्थान

हजारों की तादाद में कुम्भ मेला पर उमड़ती भीड़

है। 'पेशवाई' प्रवेशाई का देशज शब्द है, जिसका अर्थ है- शोभायात्रा। जो विश्व भर से आने वाले लोगों का स्वागत कर कुम्भ मेले के आयोजन को सूचित करने के निमित्त निकाली जाती है। पेशवाई में साधु-सन्त अपनी टोलियों के साथ बड़े धूमधाम से हाथी, घोड़ों, बग्घी और बैंड के साथ प्रदर्शन करते हुए कुम्भ में पहुँचते हैं। पेशवाई के स्वागत एवं दर्शन हेतु मार्ग के दोनों ओर भारी संख्या में श्रद्धालु एवं सेवादार खड़े रहते हैं जो शोभायात्रा के ऊपर पुष्प वर्षा एवं माल्यार्पण कर अखाड़ों का स्वागत करते हैं। यह दृश्य माहौल को रोमांच से भर देता है।

संतों, महंतों, नागाओं के अलावा कुंभ के आभूषण कल्पवासी भी होते हैं। उनके साधारण कैम्पों में कुंभ की आत्मा बसती है। ये महीनों तक संगम स्थान पर पुण्य कमाते हैं। कल्पवास में एक बार खाना और हर दिन गंगा नहाना होता है। इनके लिए मेला कौतुक नहीं बल्कि, कुंभ आस्था और मोक्ष का वाहक होता है। कुंभ भारतीय संस्कृति की जीवंतता का प्रमाण है। गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती के पावन संगम स्थल पर बिना आमंत्रण के ही करोड़ों लोगों की होने वाली आमद कुंभ के प्रति अगाध आस्था का मौन संदेश है। कबीर कहते हैं कि विश्व सागर समान है। ब्रह्मांड है, जिसके चहुं ओर चेतनता रूपी जल ही जल है तथा हम जीव भी छोटे-छोटे मिट्टी के घड़ों के समान हैं। कुंभ हैं, जो जल से भरा है, चेतनायुक्त है तथा हमारे शरीर रूपी कुंभ को विश्व रूपी सागर से अलग करने वाले कारण हमारे रूप-रंग-आकार-प्रकार ही हैं।

कुंभ का संस्कृत अर्थ है कलश। ज्योतिष शास्त्र में कुंभ राशि का यही चिह्न है। कलश के मुख को भगवान विष्णु, गर्दन को वरुण, आधार को ब्रह्मा और बीच के भाग को समस्त देवी-देवताओं और अंदर के जल को कुंभ के बाहर-भीतर पानी का प्रतीक माना जाता है, जो आत्म-जागृति का वाहक बनता है। कुंभ को लेकर अनेक कथाएं हैं। अमरता की कामना देवताओं में भी रही है। पौराणिक आख्यानों के अनुसार अमृत कुंभ की खोज इसी अमरता की कामना की पूर्ति के लिए हुई। देवताओं और असुरों दोनों में अक्सर युद्ध होता था। वर्चस्व के लिए होने वाले इस युद्ध में देवता असुरों से पराजित होते थे। एक बार देवता अपनी समस्या लेकर भगवान विष्णु के पास गये। भगवान विष्णु ने समाधान बताया कि अगर क्षीरसागर का मंथन किया जाए तो उससे अमृत कुंभ निकलेगा। इसमें भरा अमृत पीने से अमरता मिल सकती है। लेकिन यह मंथन अकेले संभव नहीं। इसके लिए असुरों को भी तैयार करना होगा। देवताओं ने असुरों को अमृत का लालच देकर समुद्र-मंथन के लिए तैयार कर लिया। इसके लिए मंदराचल पर्वत को मथानी बनाया गया और नागराज वासुकि को रस्सी के रूप में प्रयोग किया गया। पर्वत नीचे न धंसने पाए, इसके लिए भगवान विष्णु स्वयं कच्छप बने। कच्छप की पीठ पर मथानी रखकर मंथन किया गया। इसमें एक-एक करके 13 रत्न निकले। चैदहवां रत्न अमृत कुंभ था। दोनों पक्षों में अमृत पाने की लालसा थी। लेकिन इसी बीच देवराज इंद्र का पुत्र जयंत अमृत कुंभ लेकर आकाश में चला गया। असुर भी उसके पीछे भागे। अमृत कुंभ के लिए दोनों पक्षों में फिर संघर्ष शुरू हो गया। युद्ध के दौरान जिन-जिन स्थानों पर अमृत कुंभ रखना पड़ा, वहां आपाधापी में अमृत की बूंदें

कुम्भ मेला पर पावन स्नान हेतु एकत्रित भीड़

छलककर गिर पड़ीं, उन्हीं चार स्थानों- प्रयागराज, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक में कुंभ पर्व मनाया जाने लगा।

कुंभ सभ्यता का संगम तैयार करता है। अनेकता में एकता वाले भारत की विविधता बताता है। तभी तो हम पिता की आज्ञा का पालन करने वाले राम की पूजा करते हैं, जबकि दूसरी ओर पिता की अवज्ञा करने वाले प्रह्लाद की भी पूजा करते हैं। इसी तरह पति और परिजनों की आज्ञा मानने वाली माता सीता की पूजा करते हैं, वहीं दूसरी ओर पति की

अवज्ञा करने वाली मीरा की भी पूजा करते हैं। यह विरोधाभास भले हो पर इसके सकारात्मक संदेश भारतीयों की आत्मा में रचे-बसे हैं। यह भारत की मानवीय चेतना को प्रवाहित करती है। कुंभ शक्ति, ज्ञान, विज्ञान का प्रतीक है। कुंभ हमारे धर्म का अर्थ है। संस्कृति का पर्याय है। इसीलिए कुंभ को लेकर शक्ति की अनंत अंतरकथाएं प्रचलित हैं। कुंभ के साथ बहुआयामी संवेदनाएं हैं। कभी यह रिश्तेदारों और परिजनों से मिलने का बहाना भी होता था। एक-दो दशक पहले प्रयागराज का शायद ही कोई ऐसा घर हो, जहां कुंभ के दौरान रिश्तेदार आकर न टिकते हों। संगम तट से अलग शहर में भी कुंभ होता था। हालांकि न्यूक्लीयर फैमिली, शहरीकरण और वैश्वीकरण ने शहर के घरों में बसने वाले कुंभ को उजाड़ दिया है। अब कुंभ सिर्फ संगम और गंगा की रेती तक सिमट कर रह गया है। अब कुंभ में लोग बिछड़ते नहीं हैं। मिलने के लिए लोग कुंभ में आते भी नहीं हैं। पहले कई फिल्मों में दो जुड़वां भाई कुंभ में बिछड़ते थे। मेलों में बिछड़ते थे। फिल्म के क्लाइमेक्स में आकर मिलते थे। फिल्म देखने वाले हर शख्स को सहस्त्राब्दि के नायक अमिताभ बच्चन और शशि कपूर के मिलने और बिछड़ने का दृश्य भूला नहीं होगा। संतों-महंतों और नागाओं ने कुंभ की रोशनी कल्पवासियों से अपनी ओर मोड़ ली है। तकरीबन 25 सौ से तीन हजार संस्थाएं कुंभ में शिरकत करती हैं।

गंगा के बिना हिन्दू संस्कार अधूरे हैं। गंगा पवित्र नदी है। नदी सूक्त में सर्वप्रथम गंगा का ही आह्वान किया गया है। ऋग्वेद में 'गंगय' शब्द आया है। शतपथ ब्राह्मण एवं ऐतरेय ब्राह्मण में गंगा और यमुना के किनारे पर भरत दौष्यंत की विजयों और यज्ञों का उल्लेख है। स्कंद पुराण में गंगा के सहस्र नाम हैं। महाभारत और पुराण में गंगा की महत्ता और पवित्रता के सैकड़ों श्लोक हैं। कुंभ की महिमा गंगा से जुड़ी है। तुलसी, पद्माकर, भारतेन्दु हरिश्चंद्र आदि ने गंगा को अपनी कविता का विषय बनाया है। पर आधुनिक कवि गंगा पर लिखने से कतराते हैं, इसलिए कि कहीं उन्हें आस्थावादी और हिंदुत्ववादी न मान लिया जाए। कुंभ पर सॉनेट लिखने के चलते त्रिलोचन पर प्रगतिशीलों की ऐसी भृकुटियां तनीं कि वे यह पता करने लगे कि कहीं त्रिलोचन भीतर से हिंदुत्ववादी तो नहीं हो गये हैं। हिंदी के प्रख्यात कवि त्रिलोचन के मन में कुछ ऐसा ही आकर्षण था, जो उन्हें कुंभ मेले में खींच ले गया। उन दिनों शमशेर तो वहाँ थे ही, त्रिलोचन बनारस में रहते थे। सो वे प्रयाग आये और कुंभ में कई दिनों तक प्रवास करते रहे। इस दौरान उन्होंने अपने पचीस सॉनेटों में महाकुंभ को समेटा। उसके हर पहलू पर एक सॉनेट। रामविलास शर्मा ने इन सॉनेटों को हिंदी भाषा का लघुत्तम महाकाव्य कहा था।

शमशेर की कविताओं में भी इलाहाबाद और गंगा की कुछ यादें हैं। टूटी हुई बिखरी हुई में इसके कुछ चित्र मिलते हैं। निबंधकार विद्यानिवास मिश्र प्रायः गंगा-यमुना के संगम तट पर भागवत कथा सुनते और माह भर संगम तट पर ठिठुरती शीत में स्नान किया करते थे। उन्होंने लिखा है, "1942 से कल्पवास की साधना का अभ्यासी मन चल मन गंगा तीरे कहता हुआ निकल पड़ता था।"

कुंभ यात्रा के एक रोमांचक वृत्तांत में कथाकार रामदरश मिश्र ने लिखा है कि कैसे वे अपनी माँ और दो अन्य बुजुर्ग स्त्रियों के साथ प्रयाग पहुँचे और एक पंडे के यहाँ रहने का

ठीहा जुगाड़ किया। वे लिखते हैं, “यात्रियों के पास चादर या दरी के अलावा होता क्या है? माघ में सील भरी जमीन पर चादर या दरी बिछाकर सोना कितना मुश्किल होता है? लेकिन कुछ मुश्किल नहीं होता, जिसके भीतर गंगा मइया के प्रताप से मुक्ति की आकांक्षा भरी हो।” पूर्ण कुंभ का ऐसा ही एक अनुभव कथाकार विवेकी राय का भी है। विवेकी राय पर अपनी माँ सहित दो अन्य बूढ़ी माताओं को स्नान कराने का जिम्मा आन पड़ा था। इस मेले में उनकी देखभाल के बावजूद एक माँ जी नहाने के वक्त कहीं खो गईं और फिर दूसरे दिन तड़के किसी तरह वह वापस मिल सकीं। मेले की भीड़ में कहीं बैठने का जोग नहीं, ठीहा

कुम्भ मेला पर हिन्दू श्रद्धालुओं द्वारा गंगा व यमुना में पावन स्नान का निर्वहन

नहीं। सो वे एक ईंट ही झोले में भरकर चलते-फिरते रहे। जहाँ थकान महसूस होती, ईंट निकाल कर बैठ जाते। इस यात्रा का बेहद रोमांचक खाका खींचते हुए अंत में उन्होंने लिखा है, तकिए की जगह वही ईंट का प्रिय टुकड़ा कुछ कपड़ों के साथ रखा जाता और ऊनी चादर पर कट जाती महाकुंभ की रातें।

निर्मल वर्मा कुंभ से लौटते लोगों को देख कहते हैं, सबके हाथों में गीली धोतियाँ, तौलिए हैं, गगरियों और लोटों में गंगाजल भरा है। मैं इन्हें फिर कभी नहीं देखूंगा। कुछ दिनों में वे सब हिंदुस्तान के सुदूर कोनों में खो जाएंगे, लेकिन एक दिन हम फिर मिलेंगे, मृत्यु

की घड़ी में आज का गंगाजल, उसकी कुछ बूंदें, उनके चेहरों पर छिड़की जाएंगी। ऊन के गोले की तरह खुलते सूरज से लेकर मेले में फहरती पताकाओं, शिविरों, बुझी आवाजों में गाते कीर्तनियों, ऋग्वेद की ऋचाओं के शुद्ध उच्चारण में पगी सुर लहरियों, नंगे निरंजनी साधुओं, खुली धूप में पसरे हिप्पियों, युद्ध की छोटी-मोटी छावनियों से तने तंबुओं के इस वातावरण से बावस्ता निर्मल वर्मा ने यहाँ अपने भीतर के निर्माल्य का खुला परिचय दिया है। समरेश बसु का उपन्यास अमृत कुंभ की खोज में भी उन्होंने कुंभ मेले को आधार बनाकर पूरा गल्प ही रच डाला है। हिंदी कहानी की नींव रखने वाली बंग महिला राजेन्द्र बाला घोष की एक कहानी कुंभ में छोटी बहू नाम से भी है, जिसमें छोटी बहू की कुंभ स्नान की इच्छा का मार्मिक निरूपण है।

महाकुंभ के रूप में स्नान और धर्म-कर्म की इस महाबेला को लेखकों-कवियों ने भी महसूस किया है। डॉ. ओम निश्चल के मुताबिक मैं वहीं बैठ जाना चाहता था, भीगी रेत पर। असंख्य पदचिह्नों के बीच अपनी भाग्यरेखा को बांधता हुआ। पर यह असंभव था। मेरे आगे-पीछे अंतहीन यात्रियों की कतार थी। शताब्दियों से चलती हुई, थकी, उद्भ्रांत, मलिन, फिर भी सतत प्रवाहमान। पता नहीं, वे कहाँ जा रहे हैं, किस दिशा में, किस दिशा को खोज रहे हैं, एक शती से दूसरी शती की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए? कहाँ है वह कुंभ घट जिसे देवताओं ने यहीं कहीं बालू के भीतर दबाकर रखा था? न जाने कैसा स्वाद होगा उस सत्य का, अमृत की कुछ तलछटी बूंदों का, जिसकी तलाश में यह लंबी यातना भरी धूल-धूसरित यात्रा शुरू हुई हैं। हजारों वर्षों के लॉन्ग मार्च, तीर्थ अभियान, सूखे कंठ की अपार तृष्णा, जिसे इतिहासकार भारतीय संस्कृति कहते हैं।

कुंभ में हमारी कोशिश अंदर जमे पानी की गंगाजल से तालमेल बिठाने की होनी चाहिए। अंदर और बाहर के जल का भेद खत्म हो जाना चाहिए। इस शरीर रूपी घड़े के अहंकार के फूटते ही अन्दर-बाहर का अंतर मिट जाएगा, पानी-पानी में मिल जाएगा, जड़ता के मिटते ही चेतनता चारों ओर निर्बाध व्याप्त होगी, सारी विभिन्नताओं को पीछे छोड़ आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाएगी। यही कुंभ का तत्व, ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, धर्म और प्रेरणा है। यही कुंभ की सफलता है। हमलोग आत्मा के अमरत्व के साथ जुड़े हुए लोग हैं। आत्मा की सोच हमें काल से न तो बंधने देती है और न ही गुलाम बनने देती है। धर्म हमारे लिए जोड़ने की शक्ति है। हमारे धर्म और दर्शन का प्रमाण है हमारी अनेकता और विविधता का जीवंत दस्तावेज। हमारी धार्मिक मान्यताओं का वाहक है। हमारे मोक्ष का

हजारों श्रद्धालुओं की भीड़ का एक दृश्य

माध्यम है। हमारी संस्कृति की पहचान है। हमारी अंतरात्मा का अटूट विश्वास है। जिन्होंने कुंभ नहीं देखा, उन्होंने देश नहीं देखा। जिन्होंने देश की तासीर नहीं परखी, देश का मिज़ाज नहीं पाया, देश को वह आत्मसात नहीं कर पाया। हम कह सकते हैं- जिन्ने कुंभ नहीं वेख्या, वो जाम्या ही नहीं!

आदि शङ्कराचार्य

प्रो. राम नाथ झा
आचार्य
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली - 110067

परिचय

आदि शङ्कराचार्य भारतीय ऋषि, विद्वान्, दार्शनिक तथा आचार्य परम्परा के ऐसे प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने उपनिषद् में वर्णित सत्य का साक्षात्कार किया, उसकी तर्कपूर्ण व्याख्या की तथा आगामी परम्परा के जिज्ञासु के लिये इस प्रकार की सामग्री उपलब्ध करा गये जिसके आधार पर सत्यान्वेषी सत्य का साक्षात्कार करते हुए मुक्ति की अवस्था को प्राप्त कर सके। बाल्यकाल से अन्तिम समय तक उनका जीवन दिव्य एवं अलौकिक रहा। सामान्यतः उनका जीवनकाल 788 से 820 शताब्दी के मध्य माना जाता है, किन्तु चार प्रमुख मठों में एक गोवर्धनमठ के तथ्यों के आधार पर उनका समय ईसा पूर्व 5वीं 6वीं शताब्दी में स्थापित होता है। उनका जन्म प्रौढ़ता को प्राप्त शिवगुरु एवं आर्याम्बा (सती) से केरल के कालड़ी गाँव में हुआ। ऐसा उल्लिखित है कि सन्तान की प्राप्ति हेतु शिवगुरु दम्पत्ती भगवान् शिव के मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग जो कि वृषक्षेत्र के अधिष्ठाता देव हैं, के आश्रय में गये।[1] दीर्घकाल की कठिन तपस्या के पश्चात् शिवगुरु ने स्वप्न देखा कि भगवान् शिव ने उनके यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न होने का वरदान दिया है।[2] उसके पश्चात् निश्चित समय पर जब उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई तो उसका नाम उन्होंने शङ्कर रखा।

शङ्कर बाल्यकाल से ही अद्भुत प्रतिभा से सम्पन्न थे, किन्तु दुर्भाग्यवश शङ्कर जब तीन वर्ष के हुए तब उनके पिता का निधन हो गया।[3] इस प्रकार के दुःख का सहन करते हुए भी उन्होंने आठ वर्ष के वय तक चार वेदों, छः वेदाङ्गों[4], न्याय, सांख्य, योग, भाट्टमीमांसा, इतिहास, पुराण, महाभारत, स्मृति-आदि[5] की विधिवत् शिक्षा प्राप्त कर ली तथा इन विषयों में निष्णात हो गये। उन्होंने महाभारत के शान्तिपर्व में

1. जायाऽपि तस्य विमला नियमोपतापैश्चिक्लेश कायमनिशं शिवमर्चयन्ती।
क्षेत्रे वृषस्य निवसन्तमजं स भर्तुः कालोऽत्यगादिति तयोस्तपतोरनेकः॥ शङ्करदिग्विजय, २.५०
2. आकर्णयन्निति बुबोध स विप्रवर्यस्तं चाब्रवीन्निकलत्रमनिन्दितात्मा।
स्वप्नं शशंस वनितामणिरस्य भार्या सत्वं भविष्यति तु नौ तनयो महात्मा॥ शङ्करदिग्विजय, २.५४
3. शिवगुरुः स जरंस्त्रिसमे शिशावमृत कर्मवशः सुतमोदितः।
उपनिनीषितसूनुरपि स्वयं नहि यमोऽस्य कृताकृतमीक्षते॥ शङ्करदिग्विजय, ४.११
4. अधिजगे निगमांश्चतुरोऽपि स क्रमत एव गुरोः सषडङ्गकान्।
अजानि विस्मितमत्र महामतौ द्विजसुतेऽल्पतनौ जनतामनः॥ शङ्करदिग्विजय, ४.१६
5 इतिहासपुराणभारतस्मृतिशास्त्राणि पुनः पुनर्मुदा।
विबुधैः सुबुधो विलोकयन् सकलज्ञत्वपदं प्रपेदितवान्॥ शङ्करदिग्विजय, ४.१०६

वर्णित मोक्षसम्बन्धी विषय का अनेक बार अध्ययन करते हुए उसे आत्मसात् कर लिया।[6] शङ्करदिग्विजय के अनुसार उनकी वेदसम्बन्धी विद्वत्ता ब्रह्मा जैसी, वेदाङ्ग का ज्ञान गार्ग्य जैसा, वेद और वेदाङ्ग के तात्पर्यार्थ का अधिगम बृहस्पति जैसा, वेद के कर्मपक्ष में प्रवीणता जैमिनि जैसी तथा वैदिक विवेकज्ञान में व्यास जैसा था।[7] कालड़ी के आस-पास की सभी दिशाओं के लोग उनके अलौकिक ज्ञान से हतप्रभ थे। एक बार जब वह पूर्णा नदी में स्नान हेतु गए तो घड़ियाल ने उनके पैर को पकड़ लिया। बिना किसी भय के उन्होंने तत्काल अपनी माता से निवेदन किया कि यदि वह उन्हें संन्यास लेने की आज्ञा देती हैं तो उनकी प्राण-रक्षा हो सकती है।[8] किसी भी माता की अन्तिम इच्छा उसके पुत्र की जीवन-रक्षा होती है। माता ने शीघ्र ही संन्यास लेने की अनुमति प्रदान की। यद्यपि पहले भी शङ्कर ने अनेक बार अपनी माता से इस प्रकार का निवेदन किया था किन्तु वह इससे सहमत नहीं हो पायी थी। माता का आदेश मिलते ही घड़ियाल से उनकी प्राणरक्षा हो गयी।[9] यह घटना आश्चर्यजनक थी। वस्तुतः यह घटना इस बात को सङ्केतित करती है कि जब तक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्त नहीं होता, समाज के लिए वह कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकता। घड़ियाल यहाँ स्वार्थ का प्रतीक है तथा उसके जबड़े से मुक्ति व्यक्तिगत स्वार्थ से मुक्ति का सूचक है, जो अन्ततः आचार्य शङ्कर को समाजकल्याण के व्यापक कार्य हेतु मार्ग प्रशस्त करता है।

आचार्य शङ्कर का आध्यात्मिक अद्वैतता, राष्ट्रीय अखण्डता, सामाजिक एकतानता तथा सांस्कृतिक एकता सम्बन्धी योगदान अभूतपूर्व है। बेलगाँव से प्राप्त तीन तालपत्रों में उल्लिखित है कि शङ्कर ने आठ वर्ष के वय से पूर्व ही सभी वेदों का अध्ययन कर लिया था, बारह वर्ष से पूर्व सभी शास्त्रों एवं दार्शनिक सम्प्रदायों में निष्णात हो गये थे, सोलह वर्ष से पूर्व उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र एवं श्रीमद्भगवद्गीता पर भाष्यों का प्रणयन कर लिया था। तत्पश्चात् शैक्षणिक, आध्यात्मिक, धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में राष्ट्र की दृष्टि से अभूतपूर्व योगदान देते हुए इस लोकव्यवहार से अपने को मुक्त कर लिया था। उनके कार्य अविस्मरणीय, प्रेरणा के स्रोत एवं उत्कृष्टता के मापदण्ड हैं।[10]

माता की मृत्यु एवं उनका संस्कार

आचार्य शङ्कर जब भारतवर्ष के सुदूर किसी प्रान्त में शास्त्रार्थ एवं अद्वैतवेदान्त की स्थापना में संलग्न थे उसी समय अचानक उन्हें अपनी माता के मृत्युकाल का सङ्केत प्राप्त हुआ। संन्यास ग्रहण करते समय माता के समक्ष ली हुई प्रतिज्ञा के अनुसार वे शीघ्रातिशीघ्र अपने

---

6 असत्प्रपञ्चश्चतुराननोऽपि सन्नभोगयोगी पुरुषोत्तमोऽपि सन्।
अनङ्गजेताऽप्यविरूपदर्शनो जयत्यपूर्वो जगदद्वयीगुरुः॥ शङ्करदिग्विजय, ४.१०७

7 वेदे ब्रह्मसमस्ततदङ्गनिचये गार्ग्योपमस्तत्कथा-
तात्पर्यार्थविवेचने गुरुसमस्तत्कर्मसंवर्णने।
असीज्जैमिनिरेव तद्वचनजप्रोद्बोधकन्दे समो
व्यासेनैव स मुर्तिमानिव नवो वाणीविलासैर्वृतः॥ शङ्करदिग्विजय, ४.१९

8 त्यजति नूनमयं चरणं चलो जलचरोऽम्ब तवानुमतेन मे।
सकलसंन्यसने परिकल्पिते यदि तवानुमतिः परिकल्पये॥ शङ्करदिग्विजय, ५.६५

9 इति शिशौ चकिता वदति स्फुटं व्यथित साऽनुमतिं द्रुतमम्बिका।
सति सुते भविता मम दर्शनं मृतवतस्तदुनेति विनिश्चयः॥
तदनु संन्यसनं मनसा व्यधादथ मुमोच शिशुं खलनक्रकः।
शिशुरूपेत्य सरित्तटमत्रसन् प्रसुवमेतदुवाच शुचाऽऽवृत्ताम्॥ शङ्करदिग्विजय, ५.६६-६७॥

10 बलदेव उपाध्याय, श्रीशङ्कराचार्य, पृष्ठ संख्या ४२

जन्मभूमि की ओर प्रस्थान किया एवं वहाँ पहुँचकर उनके स्वास्थ्य की चिन्ता करते हुए उन्हें अद्वैतवेदान्त में उपदिष्ट किया। माता की मृत्यु के पश्चात् जब उनके दाह-संस्कार हेतु शङ्कर उन्मुख हुए तो गाँव के लोग यह कहते हुए आचार्य शङ्कर का विरोध करने लगे कि एक संन्यासी को किसी का दाह-संस्कार करने का अधिकार नहीं होता अतः वे इस कार्य में उनके साथ सम्मिलित नहीं होंगे। आचार्य शङ्कर ने समाज के इस प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए अपने वचन के अनुसार स्वयं ही माता का दाह-संस्कार[11] किया तथा तदुपरान्त एक बार पुनः समाज में प्रचलित नकारात्मक क्रियाकलापों के समाप्त्यर्थ अद्वैतवेदान्त की स्थापना में सन्नद्ध हो गये।

आचार्य शङ्कर के प्रमुख शिष्य एवं चार मठों की स्थापना

यद्यपि आचार्य शङ्कर के अनेकानेक शिष्य थे किन्तु उनमें चार अत्यधिक प्रसिद्ध थे। उनके नाम हैं - पद्मपादाचार्य, हस्तामलकाचार्य, तोटकाचार्य एवं सुरेश्वराचार्य। इनमें भी पद्मपाद (सनन्दन) उनके अत्यधिक प्रिय थे, जिसके कारण अन्य शिष्य उनसे (पद्मपाद से) द्वेष भी करते थे।[12] आचार्य शङ्कर के अनुसार शिष्य की केवल शैक्षणिक उत्कृष्टता ही गुरु के लिये उसके प्रिय होने का मापदण्ड नहीं है किन्तु उसकी निष्ठा भी उतना ही आवश्यक है। निष्ठा के बिना वह ज्ञान की गहनता कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता। उनके अनुसार शैक्षणिक उत्कृष्टता किसी व्यक्ति को विकसित करने के लिए महत्त्वपूर्ण है लेकिन केवल शैक्षणिक उत्कृष्टता से उसका व्यक्तित्व सीमित होता है इसमें कोई सन्देह नहीं। आचार्य शङ्कर के समक्ष पद्मपाद ने अनेक बार अपनी निष्ठा को सिद्ध किया था।

अद्वैतवाद का प्रचार एवं अपने प्रमुख चार शिष्यों को आनेवाली पीढ़ी हेतु उसका संवाहक बनाने के लिये आचार्य शङ्कर ने चार मठों की स्थापना की-

1. शारदामठ - भारत के पश्चिम भाग के द्वारका क्षेत्र में आचार्य शङ्कर ने शारदामठ की स्थापना की तथा हस्तामलक को उसका प्रथम सञ्चालक नियुक्त किया। शारदामठ से सम्बद्ध संन्यासियों के लिये तीर्थ एवं आश्रम ऐसे दो उपनाम निर्धारित किये गये। इस मठ का मूल ग्रन्थ सामवेद तथा महावाक्य तत्त्वमसि हैं। सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र एवं अन्य सम्बद्ध राज्य इस मठ के आध्यात्मिक प्रशासन के अन्तर्गत सम्मिलित हैं।[13]
2. गोवर्धनमठ - भारत के पूर्व में स्थित पुरुषोत्तम क्षेत्र के जगन्नाथपुरी में आचार्य शङ्कर ने गोवर्धनमठ की स्थापना की एवं पद्मपाद को उसका प्रथम सञ्चालक नियुक्त किया। इस मठ से सम्बद्ध संन्यासियों के लिये वन एवं अरण्य ऐसे दो उपनाम निर्धारित किये गये। इस मठ का मूल ग्रन्थ ऋग्वेद एवं महावाक्य प्रज्ञानं ब्रह्म हैं। बिहार, बंगाल, उड़ीसा तथा अन्य पूर्वी राज्य इस मठ के

---

11 अनलं बहुधाऽर्थिताऽपि तस्मै बत नाऽऽदत्त च बन्धुता तदीया।
अथ कोपपरीवृतान्तरोऽसावखिलांस्तानशपच्च निर्ममेन्द्रः॥
संचित्य काष्ठानि सुशुष्कवन्ति गृहोपकण्ठे धृततोयपात्रः।
स दक्षिणे दोष्णि ममन्थ वह्निं ददाह तां तेन च संयतात्मा॥ शङ्करदिग्विजय, १४.४७ -४८

12 ईर्ष्याभराकुलहृदामितराश्रवाणं प्रख्यापयन्ननुमामदसीयभक्तिम्।
अभ्रापगापरतटस्थममुं कदाचिदाकारयन् निगमशेखरदेशिकेन्द्रः॥ शङ्करदिग्विजय, ६.६९

13 सिन्धुसौवीरसौराष्ट्र महाराष्ट्रास्तथान्तराः।
देशाः पश्चिमादिक्स्था ये शारदामठभागिनः॥ शारदामठाम्नाय, ५

आध्यात्मिक प्रशासन के अन्तर्गत सम्मिलित हैं।[14]

3. ज्योतिर्मठ - भारत के उत्तरी भाग के बद्रिकाश्रम क्षेत्र में आचार्य शङ्कर ने ज्योतिर्मठ की स्थापना की एवं तोटकाचार्य को उसका प्रथम सञ्चालक नियुक्त किया। इस मठ से सम्बद्ध संन्यासियों के लिये गिरि, पर्वत एवं सागर ऐसे तीन उपनाम निर्धारित किये गये। इस मठ का मूल ग्रन्थ अथर्ववेद तथा महावाक्य अयमात्मा ब्रह्म हैं। कुरु, कश्मीर, कम्बोज, पाञ्चाल, एवं अन्य सम्बद्ध राज्य इस मठ के आध्यात्मिक प्रशासन के अन्तर्गत सम्मिलित हैं।[15]
4. श्रृंगेरीमठ - भारत के दक्षिणी भाग के रामेश्वर क्षेत्र में आचार्य शङ्कर ने श्रृंगरी की स्थापना की तथा सुरेश्वराचार्य (मण्डनमिश्र) को उसका प्रथम सञ्चालक नियुक्त किया इस मठ से सम्बद्ध संन्यासियों के लिये सरस्वती, भारती एवं पुरी ऐसे तीन उपनाम निर्धारित किये गये। इस मठ का मूल ग्रन्थ यजुर्वेद तथा महावाक्य अहं ब्रह्मास्मि हैं। आन्ध्र, तैलंगाना, कर्णाटक, द्रविड़ (तमिळनाडु), केरल एवं अन्य सम्बद्ध राज्य इस मठ के आध्यात्मिक प्रशासन के अन्तर्गत सम्मिलित हैं।[16]

इन सभी मठों के सम्यक् रूप से सञ्चालनार्थ एवं इनसे सम्बद्ध सत्यान्वेषी लोगों के हितार्थ आचार्य शङ्कर ने एक महानुशासन नामक वैधानिक ग्रन्थ का निर्माण किया एवं सभी शङ्कराचार्यों[17] के लिये नियमानुसार कर्त्तव्यों की व्यवस्था की। महानुशासन ग्रन्थ के नियमानुसार सभी चार प्रमुख शङ्कराचार्यों को सदैव अपने क्षेत्रों का भ्रमण करना चाहिये। लोगों के द्वारा किये जानेवाले कार्यों की समीक्षा करनी चाहिये तथा उन्हें सत्कार्यों में नियुक्त करते हुए सांसारिक एवं आध्यात्मिक उन्नति हेतु दिशा प्रदान करनी चाहिये।[18] आचार्य शङ्कर के अनुसार उपर्युक्त विधान देश की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति, दृढ़ आधार एवं राष्ट्र गौरव के लिये अत्यावश्यक है। अतः नियुक्त शङ्कराचार्यों को कम से कम समय मठ में बिताना चाहिये तथा अधिक से अधिक समय समाज में रहते हुए सत्यान्वेषियों के लिये व्यतीत करना चाहिये।[19] उनके अनुसार वैदिक धर्म सनातन[20] है और उसमें यह क्षमता है कि वह मानवता के सहित सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा कर सके। अतः शङ्कराचार्यों के द्वारा श्रमपूर्वक वैदिक धर्म की रक्षा अपरिहार्य है। सनातन धर्म की रक्षा से ही संसार की रक्षा सम्भव है।[21] आचार्य की यह

---

14 अङ्गवङ्गकलिङ्गाश्च मगधोत्कलबर्ब्बराः।
गोवर्द्धनमठाधीनां देशाः प्राचीव्यवस्थिताः॥ गोवर्धनमठाम्नाय, ४

15 कुरुकाश्मीरकाम्बोजपाञ्चालादिविभागतः।
ज्योतिर्मठवशा देशा उदीचीदिगवस्थिताः॥ ज्योतिर्मठाम्नाय, ५

16 आन्ध्रद्राविडकर्णाटककेरलादिप्रभेदतः।
श्रृंङ्गेर्यधीनां देशास्ते ह्यवाचीदिगवस्थिताः॥ श्रृंगेरीमठाम्नाय, ५

17 आदि शङ्कराचार्य के पश्चात् सभी चार मठों के सञ्चालकों का पदेन शङ्कराचार्य नाम रख दिया गया, जो आज तक अबाधित रूप से प्रचलित है।

18 विरुद्धचारणप्राप्तवाचार्याणां समज्ञया।
लोकान् संशीलयन्त्वेव स्वधर्माप्रतिरोधतः॥ महानुशासन, ३

19 स्वस्वराष्ट्रप्रतिष्ठित्यै संचारः सुविधीयताम्।
मठे तु नियतो वास आचार्यस्य न युज्यते॥ महानुशासन, ४

20 विघ्नानामपि बाहुल्यादेष धर्मः सनातनः॥ महानुशासन, १२

21 धर्मस्य पद्धतिर्ह्येषा जगत्तः स्थितिहेतवे।
सर्व वर्णाश्रमाणां हि यथाशास्त्रं विधीयते॥ महानुशासन, २५

राष्ट्रीय, मानवीय एवं वैश्विक दृष्टि उनके समग्र व्यक्तित्व की पराकाष्ठा है। उनके द्वारा चार मठों की स्थापना केवल अद्वैत उपदेश का केन्द्र नहीं है किन्तु अखण्ड भारत का प्रतीक है। आचार्य शङ्कर का स्पष्ट चिन्तन है कि केवल अध्यात्म एवं दर्शन ही भारत के लोगों को एकीकृत कर सकता है, राजनीति नहीं। भारत के लोगों के लिये यह एक अप्रतिम सन्देश है।

दशनामी संन्यास-परम्परा के संस्थापक

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि आचार्य शङ्कर ने भारत में दशनामी संन्यास परम्परा की स्थापना की। दशनामी का तात्पर्य है ऐसे संन्यासियों का समूह, जो आचार्य शङ्कर द्वारा प्रदत्त दश उपनामों - यथा गिरि, सरस्वती आदि में से किसी एक को धारण करता है। यद्यपि भारत में आचार्य शङ्कर से पूर्व संन्यास की एक प्राचीन परम्परा रही है, ऐसा आचार्य स्वयं अपने गीताभाष्य के उपोद्घात में सूचित करते हैं। आचार्य शङ्कर के अनुसार भगवान् ने स्वयं सृष्टि के आदि में गृहस्थ एवं संन्यास ऐसी दो परम्पराओं की स्थापना की। गृहस्थ की परम्परा मरीचि आदि प्रजापति एवं संन्यास की परम्परा सनक, सनन्दन आदि से आरम्भ हुई है।[22] प्रथम का सम्बन्ध प्रजा के विस्तार से है जिसमें अभ्युदय (सांसारिक उपलब्धि) की प्रधानता होती है जबकि द्वितीय निःश्रेयस (मोक्ष या परमानन्द की प्राप्ति) है जिसमें प्रधानता लोककल्याण हेतु जीवन का समर्पण करना है। अभ्युदय एवं निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति धर्म से सम्भव है तथा धर्म वह है जिसके द्वारा सृष्टि की स्थिति बनी रहती है तथा अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति होती है।[23] उपर्युक्त प्राचीन संन्यास की वैदिक-परम्परा को आचार्य शङ्कर ने व्यवस्थित रूप देते हुए उसकी सम्यक् रूप से संरचना की। यह तत्कालीन भारतीय समाज की परिस्थितियों के लिये अत्यन्त आवश्यक था। वेद की सनातन-परम्परा संकट की अवस्था में थी तथा लोकसंग्रहाभिमुख संन्यासियों से विशेष प्रकार की अपेक्षा थी। आचार्य शङ्कर के द्वारा सुव्यवस्थित संन्यास की परम्परा आज भी वैदिक ज्ञान की सुरक्षा एवं भारत की सांस्कृतिक एकता हेतु अनुशासित रूप से संन्नद्ध है।

पाँच ज्योतिर्लिङ्गों की स्थापना

आचार्य बलदेव उपाध्याय रचित श्रीशङ्कराचार्य नामक पुस्तक में यह उल्लिखित है कि आचार्य शङ्कर ने एक बार कैलाश की यात्रा की तथा वहाँ से पाँच स्फटिक लिङ्ग लाये। उनमें से लोकनिमित्त चार लिङ्गों, जो परमसत्य के प्रतीक हैं, की स्थापना चार प्रमुख तीर्थों में की। उन्होंने मुक्तिलिङ्ग की स्थापना उत्तरी भारत में बद्रीनारायण के समीप, वीरलिङ्ग की स्थापना नेपाल के नीलकण्ठक्षेत्र, मोक्षलिङ्ग की स्थापना चिदम्बरम् तथा भोगलिङ्ग की स्थापना भारत के दक्षिणी भाग स्थित श्रृंगेरी में की। योगलिङ्ग नामक पाँचवें शिवलिङ्ग को स्वयं अपने पास रखा।[24] आचार्य शङ्कर द्वारा स्थापित चार मठ जहाँ भारत की बाह्य सीमा को मापता है, वहीं चार ज्योतिर्लिङ्ग देश की आन्तरिक अखण्डता को प्रतिबिम्बित करता है।

---

22 स भगवान् सृष्ट्वा इदं जगत् तस्य च स्थिति चिकीर्षुः मरीच्यादीन् अग्रे सृष्ट्वा प्रजापतीन् प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं ग्राहयामास वेदोक्तम्। श्रीमद्भगवद्गीता, शाङ्करभाष्य, उपोद्घात

23 द्विविधो हि वेदोक्तो धर्मः प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणः च। जगतः स्थितिकारणं प्राणिनां साक्षात् अभ्युदयनिःश्रेयसहेतुः यः स धर्मो ब्राह्मणाद्यैः वर्णिभिः आश्रमिभिः च श्रेयोऽर्थिभिः अनुष्ठीयमानः। श्रीमद्भगवद्गीता, शाङ्करभाष्य, उपोद्घात

24 श्रीशङ्कराचार्य, बलदेव उपाध्याय, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण १९६३, पृष्ठ संख्या १४३

पञ्च देवतोपासना की स्थापना

आचार्य शङ्कर ने अखण्ड भारत के नेपाल, पाक अधिकृत कश्मीर सहित 82 (बयासी) स्थानों (कांचीमठ तमिळनाडु में उपलब्ध सूचना के आधार पर) का तीन बार पैदल भ्रमण किया। भ्रमण के क्रम में उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि कुछ कोसों के अन्तराल में भिन्न-भिन्न देवता लोगों के द्वारा पूजे जाते हैं जिसके कारण लोगों में अनेक प्रकार के मतभेद भी उपलब्ध थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने देव को उत्कृष्ट सिद्ध करने में सन्नद्ध था। इस मनःस्थिति के कारण समाज में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ उत्पन्न हो गयी थीं, जिसके कारण सामाजिक समरसता खण्डित हो रही थी। भारत की अखण्डता को ध्यान में रखते हुए एवं उपर्युक्त विसंगतियों से मुक्ति हेतु आचार्य शङ्कर ने देवता के अनेक रूपों को पाँच प्रचलित रूपों (आदित्य, अम्बिका, विष्णु, गणेश एवं महेश) में समाहित करते हुये सभी की पूजा सबके लिये अनिवार्य कर दी तथा लोगों के मन में यह स्थापित करने में सफल रहे कि सभी पाँच देवों में एक ही परमसत्ता चैतन्यरूप में विद्यमान है। इस प्रकार लोगों के मन में उत्पन्न भेदवृत्ति को समाप्त करने में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। तथा लोगों के अन्दर धार्मिक सहिष्णुता, साम्प्रदायिक सद्भावना तथा राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ हो गयी। आज भी भारत के अधिकतर परिवारों में पञ्च देवोपासना की परम्परा प्रचलित है। आचार्य शङ्कर का उपनिषद् पर आधारित एक ही सिद्धान्त है कि एक ही परमसत्य (परमब्रह्म - परिवर्तनरहित, शुद्धचेतनस्वरूप, अनन्त, परमानन्द एवं अद्वैत)[25] सभी देवताओं में स्थित है। आचार्य शङ्कर का अद्वैत प्रतिपादन इसी सिद्धान्त पर आधारित है जो वैदिक दर्शन का मुख्य लक्ष्य है। तत्कालीन समाज में इस प्रकार का चिन्तन व्यवहारिक रूप में लाना ही आचार्य शङ्कर की सफलता का द्योतक है।[26]

प्राचीन मन्दिरों का पुनर्निर्माण तथा भयावह मूर्तियों का दयालुतापूर्ण मूर्तियों में परिवर्तन

भारतवर्ष की यात्रा के क्रम में आचार्य शङ्कर ने अनेक जीर्ण-शीर्ण प्राचीन मन्दिरों का पुनर्निर्माण करवाया तथा उनमें देवी-देवताओं तथा शिवलिङ्गों की स्थापना की। इनके अतिरिक्त कई मन्दिरों में देवताओं की भयावह मूर्तियाँ थीं, जिन्हें उन्होंने दयालुतापूर्ण मूर्तियों के रूप में परिवर्तित कर दिया। उदाहरणस्वरूप -

1. अलकनन्दा नदी के तट पर स्थित बद्रीनाथ मन्दिर में उन्होंने पुनः विष्णु भगवान् की मूर्ति की स्थापना की।
2. आचार्य शङ्कर ने चिदम्बरम्, नीलकण्ठ (नेपाल), केदारनाथ, सोमनाथ तथा गोकर्ण में शिवलिङ्गों की स्थापना की।
3. उन्होंने प्रयागराज, तीरुवित्तूर, काञ्ची एवं त्रिचनापल्ली[27] में मन्दिरों में स्थित भयावह मूर्तियों को दयालुता से सम्पन्न तथा मातृत्वभाव से युक्त मूर्तियों के रूप में परिवर्तित कर दिया।
4. उन्होंने तिरुपति में ललाट पर लक्ष्मीयन्त्र से युक्त श्रीवेङ्कटेश्वर की स्थापना की जिसके कारण वहाँ धन के प्रवाह का सातत्य है।
5. उन्होंने श्रीरंगम् में ललाट पर जनयन्त्र के साथ श्रीरंगनाथ की स्थापना की जिसके कारण वहाँ सदैव लोगों का समूह विद्यमान रहता है।[28]

25 (i) सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। तैत्तिरीय उपनिषद्, २.१
(ii) विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। तैत्तिरीय उपनिषद्, ३.९.२८
(iii) सदेव सौम्य इदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्॥ छान्दोग्योपनिषद्, ६.२.१

26 प्राचीन भारतीय आचार्य, सम्पादक शशिप्रभा कुमार, रेवा प्रकाशन, नयी दिल्ली, २०१६

27 श्रीशङ्कराचार्य, बलदेव उपाध्याय, हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण १९६३, पृष्ठ संख्या १४३

28 प्राचीन भारतीय आचार्य, सम्पादक शशिप्रभा कुमार, रेवा प्रकाशन, नयी दिल्ली, २०१६

आचार्य शङ्कर कभी भी देवता के किसी मूर्ति विशेष से अनुरक्त नहीं हुए, अपितु क्षेत्रविशेष के लोगों की भावना के अनुरूप तत्-तत् स्थल में उसी प्रकार की भाव-भङ्गिमा से युक्त मूर्तियों की स्थापना की। यह उनकी दूरदृष्टि का परिचायक है। मूर्ति विष्णु की हो, शिव की हो, शक्ति की हो या किसी अन्य देवता की हो, उनका मुख्य प्रयोजन लोगों की भावना को सर्वोपरि महत्त्व देना था। तिरुपति में भगवान् विष्णु की मूर्ति की स्थापना, अनेक अन्य स्थलों में शिवलिङ्गों की स्थापना अथवा और किसी स्थानों पर दयालुतापूर्ण मातृत्वसम्पन्न मूर्तियों की स्थापना तत्तत् स्थलों में रहनेवाले की भावना एवं उनकी पूजा-पद्धति पर आधारित था। किन्तु इन सभी मूर्तियों की स्थापना के क्रम में वे इस बात का सदैव ध्यान रखते थे कि सभी साकार मूर्तियाँ उस एक परमतत्त्व निराकार ब्रह्म की अभिव्यक्तिमात्र हैं। ऐसा प्रायः धर्मोपदेशकों में नहीं देखा जाता। वें किसी न किसी रूप में किसी एक देवता से अवश्य सम्बद्ध होते हैं। ऐसा आचार्य शङ्कर में इसलिये सम्भव नहीं था क्योंकि उन्होंने उस एक परमतत्त्व में इस प्रकार अभिन्न रूप से स्वयं को स्थापित कर लिया था कि सभी प्रकार की मूर्तियाँ उनके लिये उस अद्वैत परमतत्त्व की अभिव्यक्तिमात्र थी। उनके इन विचारों एवं क्रियाकलापों में ऋग्वेद के उस गौरवपूर्ण एवं महान् विचार से युक्त मन्त्र स्पन्दित होता हुआ प्रतीत होता है-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥[29]

शङ्कर और प्रयागराज

बद्रीनाथ में उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता के ऊपर भाष्य लिखने तथा कुछ विशेष स्तोत्र एवं प्रकरण-ग्रन्थों की रचना करने के बाद आचार्य शङ्कर ने जहाँ एक ओर विद्वत्वर्ग की आध्यात्मिक एवं दार्शनिक जिज्ञासाओं को शान्त किया, वहीं दूसरी ओर सामान्य जनों की सत्योन्मुखी भावनाओं को भी उसके निश्चित गन्तव्य तक पहुँचाया। भारतीय उपमहाद्वीप की यात्रा के क्रम में शास्त्रार्थ की दृष्टि से उनकी प्रयागराज की यात्रा अभूतपूर्व है। प्रयागराज आदिकाल से ही वैदिक ज्ञान एवं यज्ञ की भूमि रहा है। वह पवित्र तीर्थ लाखों ऋषियों, महात्माओं, विद्वानों को अनादिकाल से अपनी दार्शनिक जिज्ञासाओं की शान्ति एवं आध्यात्मिक उन्नति हेतु आकर्षित करता रहा है। वहाँ प्रसिद्ध एवं पवित्र गङ्गा, यमुना तथा सरस्वती का त्रिवेणी सङ्गम भी विभिन्न प्रकार की ज्ञान-परम्परा के सङ्गम का प्रतीक है। आचार्य शङ्कर का प्रयागराज में आगमन एवं उस समय के प्रतिनिधि पूर्वमीमांसक आचार्य कुमारिल के साथ उनका दार्शनिक विषयों पर संवाद अनेकानेक उदाहरणों में से एक है। सङ्गम के तट पर जब आचार्य शङ्कर ने परस्पर चर्चा के क्रम में लोगों से यह कहते हुए सुना - "आचार्य कुमारिल वैदिक ज्ञान के आधिकारिक विद्वान् तथा उस ज्ञान के प्रचार के लिये ध्वजधारी संवाहक हैं, उन्होंने वेदविरोधी अपने बौद्धगुरु को तीक्ष्णतर्क से धूमिल किया है, वैदिकज्ञान की पुनः स्थापना की है तथा बौद्धगुरु को परास्त करने के कारण प्रायश्चित्तस्वरूप आत्मदाह कर रहे हैं।" - आचार्य शङ्कर शीघ्रतापूर्वक आचार्य कुमारिल से मिलने हेतु उनके पास

29 ऋग्वेद १/१६४/४६

गये।[30] उस समय आचार्य कुमारिल अपने शिष्यों से घिरे हुए थे[31] तथा ज्ञान एवं शास्त्रार्थ के प्रतीक स्वरूप प्रकाशित हो रहे थे। उन्होंने आचार्य शङ्कर का स्वागत किया।

प्रयागराज इन दो महान् वैदिक विद्वानों के मध्य में हुए संवाद का साक्षी है। संवाद का मूल विषय था कि क्या वेद का तात्पर्यार्थ कर्म में है, जो आचार्य कुमारिल के लिये अभिप्रेत था अथवा वेद का तात्पर्यार्थ ज्ञान में है, जो व्यक्ति को मोक्ष अथवा निःश्रेयस में आरुढ़ करता है, ऐसा आचार्य शङ्कर का निष्कर्ष है? वेद के द्वारा विहित कर्म निश्चित रूप से सांसारिक उपलब्धि (अभ्युदय) के लिये आवश्यक है। कर्म से ही धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति सम्भव है किन्तु अभ्युदय की अपनी सीमितता है। वस्तुतः वैदिक-परम्परा में जीवन के दो प्रमुख लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं - अभ्युदय तथा निःश्रेयस। निःश्रेयस कर्म के द्वारा सम्भव नहीं है, निःश्रेयस केवल ज्ञान से ही सम्भव है। ज्ञान से ही कोई जिज्ञासु उस परमतत्त्व ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है जो अपरिवर्तनशील, शुद्ध चैतन्य, परमानन्द, अनन्त एवं अद्वैतस्वरूप है। परिवर्तनशील (विनाशशील) कर्म से परिवर्तनशील (विनाशशील) फल की ही प्राप्त सम्भव है न कि अपरिवर्तनशील (अविनाशी) निःश्रेयस की। आचार्य शङ्कर ने इस विषय पर आचार्य कुमारिल से शास्त्रार्थ करने की प्रार्थना की किन्तु आचार्य कुमारिल ने शरीर के अधिकतर भाग दग्ध हो जाने के फलस्वरूप, इन्द्रियों की अक्षमता के कारण शास्त्रार्थ हेतु अपनी असमर्थता व्यक्त की किन्तु उन्होंने आचार्य शङ्कर को उपर्युक्त विषयों पर अपने प्रतिनिधि शिष्य आचार्य मण्डनमिश्र से शास्त्रार्थ करने की अनुशंसा की। आचार्य कुमारिल के बाद तत्कालीन भारत में आचार्य मण्डनमिश्र पूर्वमीमांसा के सबसे बड़े विद्वान् एवं वैदिक कर्म सिद्धान्त के समर्थक थे।

आचार्य शङ्कर वेद के अतिरिक्त वेदसम्मतस्मृतियों एवं पुराणों को भी यथार्थ ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं। यही कारण था कि उन्होंने वेदसम्मत स्मार्त्त एवं पौराणिक धार्मिक परम्परा को पुनः स्थापित किया। इसी क्रम में प्रयागराज के सङ्गम तट पर उन्होंने धार्मिक परम्परा के अनुरूप स्वयं भी स्नान किया तथा ऐसा सन्देश दिया कि जो भी व्यक्ति त्रिवेणी सङ्गम में स्नान करता है वह दिव्य हो जाता है, आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुःख से मुक्त हो जाता है एवं अन्त में वह स्वर्ग को प्राप्त करता है - ऐसा श्रुतिकथन है।[32] प्रयागराज का यह त्रिवेणी सङ्गम करोड़ों हिन्दुओं के लिये पवित्रतम स्थल है तथा धार्मिक मान्यताओं के आधार पर आस्था का केन्द्र है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए आचार्य शङ्कर ने सित (गङ्गा) एवं असित (यमुना) के सङ्गम की प्रशंसा की एवं वेदसम्मत चिन्तन को प्रचारित किया।[33]

प्रयागराज प्रत्येक बारह वर्ष में होनेवाले कुम्भ मेला के लिये भी विश्वविख्यात है। भारतवर्ष की सभी दिशाओं एवं विश्व के अनेकानेक देशों से आकर ज्योतिष के आधार पर निर्धारित तिथियों में लोग वहाँ स्नान करते हैं। वैदिक सनातन धर्म को माननेवाले एवं तदनुरूप

---

30 सोऽयं गुरोरुन्मथनप्रसक्तं महत्तरं दोषमपाकरिष्णुः।
अशेषवेदार्थविदास्तिकत्वात् तुषानलं प्राविशदेष धीरः॥ शङ्करदिग्विजय, ७.७५

31 श्रुत्वेति तां सत्वरमेष गच्छन् व्यालोकयत् तं तुषराशिसंस्थम्।
प्रभाकराद्यैः प्रथितप्रभावै रूपस्थितं साश्रुमुखैर्विनेयैः॥ शङ्करदिग्विजय, ७.७७

32 यत्राऽऽप्लुता दिव्यशरीरभाज आचन्द्रतारं दिवि भोगजातम्।
संभुञ्जते व्याधिकथानभिज्ञाः प्राहेममर्थं श्रुतिरेव साक्षात्॥ शङ्करदिग्विजय, ७.६६

33 अज्ञातसम्भवतिरोधिकथाऽपि वाणी यस्याः सितासिततयैव गृणाति रूपम्।
भागीरथीं यमुनया परिचर्यमाणामेतां विगाह्य मुदितो मुनिरित्यभाणीत्॥ शङ्करदिग्विजय, ७.६७

आचरण करनेवाले सनातन धर्म के लोगों का यह सबसे बड़ा एकत्रीकरण है। कुम्भ मेला के अवसर पर सुदूर हिमालय की गुफाओं से सिद्ध साधु-संत भी त्रिवेणी संगम पर आकर अपने आध्यात्मिक लक्ष्यों के प्राप्त्यर्थ स्नान करते हैं।

कर्मकाण्ड की दृष्टि से भी प्रयागराज में होनेवाला कुम्भ सबसे पवित्र माना जाता है। वैसे भी भारत में वेदमतावलम्बियों के घर में जल, दुग्ध आदि से पूरित कुम्भ को अत्यधिक पवित्र माना जाता है। इसका उल्लेख वेद से लेकर परवर्ती शास्त्रों में भी उपलब्ध है। ऋग्वेद में विविध अर्थों के रूप में कुम्भ शब्द का अनेकशः प्रयोग हुआ है किन्तु अथर्ववेद स्पष्ट रूप से कहता है कि दुग्ध, दधि एवं जल से पूरित चार-कुम्भों की ब्रह्मा (विधाता) ने रचना की और लोगों के अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति हेतु इन्हें चार-दिशाओं में स्थापित किया -

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना एतास्त्वा धारा उपयन्तु।
सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥

अथर्ववेद ४/३४/७

अथर्ववेद का यह विषय पुराणों में वर्णित देव और असुर के द्वारा समुद्र-मन्थन से निःसृत अमृतकुम्भ से साक्षात् रूप से सम्बद्ध है। पुराणों में भी इन्द्र के पुत्र जयन्त के द्वारा अमृतकुम्भ को ले जाया जाना तथा चार स्थानों पर अमृतबिन्दु का गिरना उल्लिखित है। ये चार नाम हैं- प्रयागराज {हिन्दूगणना के अनुसार माघमास (जनवरी-फरवरी) जब बृहस्पति मेषराशि में होता है तथा सूर्य और चन्द्र मकरराशि[34] में तब कुम्भ मेला का आयोजन होता है}, उज्जैन, हरिद्वार तथा नासिक। इस क्रम में प्रत्येक तीन वर्ष बाद यह कुम्भ सभी चार स्थानों में आयोजित होता है। इनमें भी प्रयागराज में आयोजित होनेवाला कुम्भ पवित्रतम है क्योंकि यहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती का त्रिवेणी सङ्गम है।

भारत वैदिक ज्ञान एवं धार्मिक परम्परा के लिये विश्वप्रसिद्ध है। ये दो परम्पराएँ हजारों वर्षों से एक साथ बिना किसी व्यवधान के आगे बढ़ रही हैं। इस विषय में ऐतिहासिक प्रमाणों का भारत में उतना अधिक महत्त्व नहीं है जितना कि पाश्चात्य जगत् में इसका महत्त्व स्वीकार किया जाता है। यही स्थिति प्रयागराज में आयोजित होनेवाले कुम्भ की प्राचीनता के विषय में है।

इस विषय में दिलीप कुमार राय का उनकी पुस्तक 'KUMBHA INDIA'S AGELESS FESTIVAL'[35] के Introduction में उपलब्ध कथन विशेष रूप से द्रष्टव्य है -

We do not know exactly when the legend of Kumbha first became crystallized and began attracting pilgrims, but we do know that the great Chinese traveller-historian Hiuen Tsang (otherwise Yuan Chwang) who came to India in the seventh century, witnessed this magnificent religious festival at Prayag, for he has left a graphic account of it. He writes that about half a million people gathered round about the confluence on that occasion and that the ceremony lasted for seventy-five days. The pilgrims comprised people from almost all ranks of life - from the Emperor Harshavardhan with his ministers and tributary chieftains, down

34 KUMBHA MELA (History and Religion; Astronomy and Cosmo biology), Subas Rai, Ganga, Kaveri Publishing House, Varanasi, 1993, p.22
35 Published by Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, 1965

to the beggar in rags. Among the participants, there were the heads of the various religious sects, as well as philosophers, scholars, ascetics and spiritual aspirants, from all walks of life."

इसी के सातत्य में एक बार पुनः उनका कथन द्रष्टव्य है -

"The date of this celebration was 644 A.D., so that it can be taken as the first account of the Kumbha Mela in recorded history. It is possible; however, that Harsha did not initiate the festival, but only adopted it and gave it a royal fillip in order to promote religious fervour among the people. It may be presumed that it has continued ever since down to our own day."

आदि शङ्कराचार्य का कुम्भ-मेला की सुव्यवस्था में क्या योगदान है, इस विषय में भी उनका कथन ध्यातव्य है -

"I need only add that in the ninth century the great Shankaracharya gave it the final shape by the force of his magic personality. He first of all established the four well-known monasteries ..... In each of these he nominated a head who was to guide the sadhus under his charge. These were exhorted to assemble regularly at the Kumbha Mela, with the twofold purpose of maintaining contact with sadhus of other denominations and fortifying the spiritual aspirants. The people responded enthusiastically, for they were thus given the twofold opportunity of winning fresh inspiration through consorting with the sadhus and redemptive bathing in the sacred rivers.[36]

प्रवीण एवं अजेय शास्त्रार्थकार

भारतवर्ष की यात्रा के क्रम में वैदिक अद्वैतवाद की स्थापना हेतु आचार्य शङ्कर अनेक सम्प्रदायों के प्रमुख आचार्य तथा दार्शनिक से मिले तथा उनसे शास्त्रार्थ किया। ऐसा इसलिये आवश्यक था क्योंकि वेदान्त की स्थापना हेतु अन्य मतावलम्बी आचार्यों का तर्कपूर्ण खण्डन आवश्यक था। शास्त्रार्थ के क्रम में कोई भी आचार्य उनके समक्ष अधिक समय तक संवाद नहीं कर पाये। आचार्य शङ्कर ने सभी आचार्यों को यह स्वीकार करने के लिये विवश कर दिया कि इस अनेकता से परिपूर्ण संसार का मूल कारण एक चेतन तत्त्व ब्रह्म है। शास्त्रार्थ की विशेषता यह थी कि पराजय को प्राप्त आचार्यों ने कभी भी अपमान का अनुभव नहीं किया किन्तु इसके विपरीत आचार्य शङ्कर के व्यक्तित्व एवं विद्वत्ता से प्रभावित होकर उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया। इस विषय में एक उदाहरण विशेषरूप से दर्शनीय है - आचार्य कुमारिल के निर्देशानुसार जब आचार्य शङ्कर आचार्य मण्डनमिश्र से शास्त्रार्थ करने हेतु उनके घर पहुँचे तो कई दिनों के शास्त्रार्थ के पश्चात् उन्होंने मण्डनमिश्र को पराजित किया किन्तु आचार्य मण्डन की पत्नी उभयभारती ने आचार्य शङ्कर को यह कहते हुए पुनः शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया कि मैं आचार्य मण्डन की अर्धाङ्गिनी हूँ तथा जब तक आप शास्त्रार्थ में मुझे पराजित नहीं कर देते तब तक आचार्य मण्डन की पराजय स्वीकार नहीं की जा सकती। कई दिनों के शास्त्रार्थ के बाद आचार्या उभयभारती ने आचार्य शङ्कर को कामशास्त्र

36 KUMBHA : INDIA'S AGELESS FESTIVAL, Dilip Kumar Roy, Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay, 1965, Introduction, p. xxi-xxii

सम्बन्धी कुछ प्रश्न किया।[37] आचार्य शङ्कर संन्यास की परम्परा की मर्यादा का निर्वाह करते हुए उभयभारती से एक मास का समय लिया तथा वहाँ से भ्रमण करते हुए मालावार राज्य पहुँचे।[38] संयोगवश उसी समय मालावार के राजा अमरूक का निधन हुआ था जिसके शरीर में योगविद्या के माध्यम से प्रवेश कर काम के क्रियाकलाप के विषय में अनुभव प्राप्त किया तथा एकमास के पश्चात् पुनः उभयभारती के पास आकर उन्हें शास्त्रार्थ में पराजित किया। शास्त्रार्थ के पश्चात् दोनों पति-पत्नी आचार्य शङ्कर से इतना अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उनकी शिष्यता स्वीकार कर ली। इसी प्रकार अन्य आचार्यों के उदाहरण भी उपलब्ध हैं।

भक्ति के प्रणेता

सामान्य रूप से आचार्य शङ्कर को ज्ञानमार्ग का आचार्य माना जाता है किन्तु उन्होंने भक्ति को कभी भी गौण नहीं माना। भक्ति का लक्षण करते हुए वे कहते हैं - "मोक्ष के सभी साधनों में भक्ति सर्वप्रधान है। अपने स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति है।"[39] भक्ति का यह लक्षण अन्य लक्षणों से पूर्णतः भिन्न है। क्योंकि सामान्यतः भक्ति का सम्बन्ध सगुण एवं साकार देवी-देवता से है। आचार्य शङ्कर के अनुसार स्वयं के मूल तत्त्व आत्मा का अन्वेषण ही भक्ति है। इसका प्रमाण आचार्य के द्वारा रचित चर्पटपञ्जरिकास्तोत्र में प्राप्त होता है। जहाँ इस प्रकार का सङ्केत है कि जब वे वाराणसी के किसी मार्ग से आगे बढ़ रहे थे तो उन्होंने एक व्यक्ति को डुकृञ् करणे ऐसा व्याकरण से सम्बद्ध धातु का पाठ करते देखा, उन्होंने तत्काल उस व्यक्ति को कहा कि आप गोविन्द का भजन करें क्योंकि मृत्यु के आसन्न होने पर डुक्रिय करणे का कण्ठस्थी-करण काम नहीं आयेगा। उनका यह प्रसिद्ध श्लोक निम्नलिखित है -

"दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः,
कालः क्रीडति गच्छत्यायुः तदपि न मुञ्चत्याशावायुः।
भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमतेः,
प्राप्ते सन्निहते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे ॥" १ ॥

आचार्य शङ्कर मन्त्रमुग्ध करनेवाले भक्तिस्तोत्रों की रचना के लिये प्रसिद्ध हैं। उनके द्वारा रचित नर्मदाष्टकम्, यमुनाष्टकम्, गङ्गाष्टकम्, मनीषापञ्चकम्, शिवमानसपूजा, सौन्दर्यलहरी, आनन्दलहरी, साधनपञ्चकम्, कनकधारास्तोत्रम्, अन्नपूर्णास्तोत्रम् आदि भक्तों एवं विद्वज्जनों के मध्य अत्यधिक प्रचलित हैं एवं भक्तिस्तोत्र के प्रतिमान के रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

आचार्य शङ्कर का शास्त्रीय एवं साहित्यिक योगदान

आचार्य शङ्कर के कर्तृत्व इतने उत्कृष्ट एवं व्यापक हैं कि कोई भी व्यक्ति आश्चर्यचकित होकर सोचने लगता है कि इतने कम समय

37 कलाः कियन्त्यो वद पुष्पधन्वनः किमात्मिकाः किं च पदं समाश्रिताः ।
पूर्वे च पक्षे कथमन्यथा स्थितिः कथं युवत्यां कथमेव पूरुषे ॥ शङ्करदिग्विजय, ९.६९

38 इति संविचिन्त्य स हृदाऽऽशु तदाऽनवबुद्धपुष्पशरशास्त्र इव ।
विदितागमोऽपि सुरिरक्षयिषुर्नियमं जगाद जगति व्रतिनाम् ॥ शङ्करदिग्विजय, ९.७१

39 मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ॥ विवेकचूडामणि, ३२

में कैसे कोई व्यक्ति इन सबकी रचना कर सकता है। उन्होंने १२ उपनिषदों (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, बृहदारण्यक, छान्दोग्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर तथा नृसिंहतापनीय), ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता पर विस्तृत भाष्य लिखा। इनके अतिरिक्त इन्होंने विष्णुसहस्रनाम, सनत्सुजातीय, ललितात्रिंशत् तथा माण्डूक्यकारिका पर भी भाष्य लिखा। आचार्य शङ्कर के नाम से अनेकानेक स्तोत्र एवं प्रकरण ग्रन्थ भी हैं। भाष्यों की लेखन शैली अपने आप में विलक्षण है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपनिषदों के ऋषि तथा ब्रह्मसूत्र एवं भगवद्गीता के रचयिता एक ही साथ आचार्य शङ्कर के रूप में प्रकट हुए तथा उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं भगवद्गीता में प्रस्तुत विषय को और अधिक सरल शैली में लोगों तक पहुँचाया। आचार्य शङ्कर केवल विद्वान् और सत्यानुभूत आचार्य नहीं हैं अपितु वेद के तात्पर्यार्थ को तार्किक एवं प्रमाण की दृष्टि से इस प्रकार प्रस्तुत करनेवाले हैं कि सत्यान्वेषियों के लिये एक नैसर्गिक एवं सरल विषय सहज रूप से प्रस्तुत हो जाता है तथा वे ऐसा अनुभव करते हैं कि संशय अपने-आप दूर हो रहा है तथा सत्य का साक्षत्कार हो रहा है। जिज्ञासु स्वयं को मुक्त अनुभव करने लगता है तथा उसे किसी अन्य प्रकार की आध्यात्मिक सहायता की आवश्यकता नहीं होती। आचार्य शङ्कर के भाष्यों की गहराई में जाने के बाद जिस प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूति होती है उससे ऐसा लगता है कि व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति अपने आप हो रही है तथा अन्ततः ऐसा अनुभव होने लगता है कि आचार्य शङ्कर स्वयं शङ्कर के अवतार हैं।[40]

निष्कर्ष

आचार्य शङ्कर का अद्वैतवाद आज भी विश्व के करोड़ों जिज्ञासुओं की आध्यात्मिक बुभुक्षा को तृप्ति प्रदान कर रहा है। भारतवर्ष तथा विश्व में अद्वैतवाद पर विशिष्ट विद्वानों एवं शोधकर्ताओं के द्वारा असंख्य टीकायें, उपटीकायें, स्वतंत्र पुस्तकें तथा शोधपत्र लिखे गये हैं तथा आज भी लिखे जा रहे हैं। आचार्य शङ्कर की अद्वैत परम्परा ने असंख्य दिव्य व्यक्तित्वों एवं आत्मवेत्ताओं को प्रस्तुत किया है जिन्होंने विश्व स्तर पर मानवता की अभूतपूर्व सेवा की है। अद्वैतवाद की परम्परा में उनके शिष्यों के अतिरिक्त कुछ प्रसिद्ध नाम इस प्रकार हैं - सर्वस्वतन्त्र वाचस्पति मिश्र, श्रीहर्ष, सर्वज्ञात्ममुनि, माधवाचार्य, चित्सुखाचार्य, मधुसूदन सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि रमण आदि।

सम्प्रति मध्यप्रदेश सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने 'आचार्य शङ्कर सांस्कृतिक एकता न्यास' की स्थापना की है, जिसके माध्यम से आचार्य शङ्कर के व्यक्तित्व, कर्तृत्व एवं औपनिषद सिद्धान्त अद्वैतवाद के सभी पक्षों पर बहुआयामी क्रियाकलाप आरम्भ किया जा रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य है कि वैदिक वाङ्मय में प्रस्तुत जीव, जगत् एवं जगदीश के स्वरूप को आचार्य शङ्कर की दृष्टि से समझना, वैदिक विज्ञान को स्थापित करना तथा आचार्य शङ्कर सदृश व्यक्तित्वों का निर्माण करना। अद्वैत के चिन्तन से ही अनियन्त्रित भौतिकवाद को दूर किया जा सकता है तथा क्षुद्र विचार जो कि भारतीय वैश्विक दृष्टि को प्रभावित कर समाज को विभाजित करना चाहता है, को समाप्त किया जा सकता है। इसी से एक सशक्त भारतवर्ष का निर्माण सम्भव है, जिसे आचार्य शङ्कर ने अपने समय में साकार किया था तथा पुनः एक बार जिस अखण्ड भारत की आवश्यकता आज है, उसको इसी सिद्धान्त से स्थापित किया जा सकता है।

---

40 शङ्करः साक्षात् शङ्करः। पारम्परिक रूप से सर्वमान्य
शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः॥ आचार्य शङ्कर की पारम्परिक प्रार्थना